हिन्दू-धर्म के ज्ञान-मय क्रिया-पक्ष की शोध-पूर्ण प्रस्तुति

'कौल-कल्पतरु'

चण्डी

(सं० १९९९ वि०-सन् १९४२ ई० से प्रकाशित)

धर्म-चर्चा

(३)

पं० देवीदत्त शुक्ल

का

हिन्दू-धर्म-विषयक

सार-गर्भित सम्पादकीय टिप्पणियाँ

धर्म-चर्चा

कोई कहता है कि भारत मजदूरों और किसानों का देश है और उन्हीं का महत्त्व यहाँ स्थापित होगा; कोई कहता है कि 'वर्णाश्रम-धर्म' ने हमारे देश का विनाश कर डाला है और अब हम यहाँ श्रेणी-हीन समाज की स्थापना करेंगे; कोई कहता है कि सम्प्रदाय-वाद ही देश के पराभव का मूल कारण रहा है और अब हम इस महा-दानव का विनाश करके ही दम लेंगे !

इस प्रकार के नाना प्रकार के वादों के वादियों की घोषणाएं सुनकर हिन्दू अपने मन में सोचता है कि यह सब क्या कहा जा रहा है ! इन घोषणाओं में उसको अपनी कोई बात नहीं दिखाई देती। घोषणा करनेवाले भी उसे अपने जैसे नहीं प्रतीत हो रहे हैं। वह अनुभव करता है कि यह सब विदेशी सभ्यता के प्रभाव से हो रहा है और उसके देश के नर-पुङ्गव अपनी सारी मौलिक बातों को हेय मानकर अपने देश को पाश्चात्य सभ्यता के रङ्ग से पोतने का उपक्रम कर रहे हैं ! स्वयं तो उसके रङ्ग में डूबे ही हुए हैं, देश को भी अपना ही जैसा बना डालने का यत्न कर रहे हैं !! वे इसी में देश का कल्याण मानते हैं।

यह प्रति ४-५० रु०, वार्षिक मूल्य ५० रु०

'कौल-कल्पतरु' पं० देवीदत्त शुक्ल विरचित

देवी-दशक

(१)

दीनन को दुःख दौरि, दूरि करै एक तू ही।
विश्व माहिं दया-वती, एक तू भवानी है।।
परम उदार तू है, देन में सकोच नाहिं।
आँचर उलटि देति, ऐसी महा-दानी है।।
प्रीति दै कै भक्ति देत, अन्त माहिं मुक्ति देत।
भक्तन को हित देखे, ऐसी महरानी है।।
शरण तिहारि गह्यौं, द्वारि पै पुकारि रह्यो।
और को न हेरौं, मोरि तू ही ठकुरानी है।।

(२)

आदि-माया तू ही मातु, भ्रम उपजाया तू ही।
जगत बनाया तू ही, ऐसी राज-रानी है।।
कालिका है त्रिपुरा है, तारा धूमा तू ही मइया।
तू ही दस-रूपा जिन्हें, जानें वर-ज्ञानी हैं।।
चण्डिका है अम्बिका है तू ही, वरदा कृपाणी तू ही।
तू ही सत्य-रूपा अम्ब! तू ही शम्भु-रानी है।
शरण तिहारि गह्यों, द्वारि पै पुकारि रह्यों।
और को न हेरौं, मोरि तू ही ठकुरानी है।।

(३)

विश्व को प्रपञ्च देखि केते अति घबरात,
घर छोड़ि बन जात कितनो नादानी है।
केते रहि तामें लिप्त जियत-मरत रहैं,
खुशी होत दुखी होत नाहिं बने ज्ञानी हैं!
भारी भ्रम-जाल माहिं फसे रहैं आठो याम,
जानत न अन्त कहाँ भूले सबै प्रानी हैं!
शरण गह्यो हौं मइया! पार तो लगाव नइया,
करत पुकारि मोरि तू ही ठकुरानी है।।

(४)

रवि माहिं शशि माहिं नखत-समूह माहिं,
जहाँ देखो तहाँ मइया! तू-ही-तू समानी है।
स्थावर में जङ्गम में परवत समुद्र माहिं,
कोऊ ऐसो ठाउँ नाहिं जहाँ तू न दिखानी है।
सूक्ष माहिं थूल माहिं अणु-परमाणु माहिं,
तोर ही लगी है छाप तू ही ठहरानी है।
शरण तिहारि गह्यों द्वारि पै पुकारि रह्यों,
और को न हेरौं मोरि तू ही ठकुरानी है।।

कौल-कल्पतरु
चण्डी

वर्ष ५०] श्रावण, 'तारण' २०४८ वि०—अगस्त, १९९१ [संख्या ५

१ परम उज्ज्वल एवं प्रभाव-शाली प्रतीक—**वन्दे मातरम्** : पूज्य श्री स्वामी आत्मानन्द जी महाराज २
२ भौतिक एवं आध्यात्मिक सुखों की कुञ्जी—**वन्दे मातरम्** : 'कुल-भूषण' पं० रमादत्त शुक्ल ५
३ माँ की कथा (योगि-राज श्री भूपेन्द्रनाथ सान्याल वचनामृत) ७
४ धार्मिक जगत् की हल-चल ९
१ पौड़ी (गढ़वाल) में नीलकण्ठ भगवान् के दर्शन, २ नासिक में कुम्भ-पर्व
५ शत-वर्षीय ब्रह्मचारी जी महाराज : पं० रामप्रकाश अवस्थी 'लाल जी' १२
६ कर्नाटक में सरस्वती के अवशेष : डा० ए० जीवन जया, बङ्गलोर १४
७ मैसूर की देवी निमिषाम्बा : डा० ए० जीवन जया, बङ्गलौर २१
८ कर्नाटक के अन्य श्रीदेवी-मन्दिर : श्री मौनेश्वर स्वामी २२
९ भौतिक-वाद का मोह : 'कौल-कल्पतरु' पण्डित देवीदत्त शुक्ल २३
१० रायचूर का शक्ति-पीठ : श्री मौनेश्वर स्वामी जी २४

धर्म-चर्चा

('चण्डी' वर्ष ५०, जून, १९९१ की सम्पादकीय टिप्पणियों के आगे का अंश)

४६ वेद-विद्या का ह्रास ('चण्डी' २०११ वि०—१९५५ ई०) ५७
४७ वितण्डा-वाद ('चण्डी' २०११ वि०—१९५५ ई०) ५८
४८ महन्त, पण्डे और पुजारी आदि ('चण्डी' २०११ वि०—१९५५ ई०) ६१
४९ भ्रान्ति की भावना ('चण्डी' २०११ वि०—१९५५ ई०) ६३
५० हमारा आदर्श ('चण्डी' २०११ वि०—१९५५ ई०) ६४

सूचना—'चण्डी' वर्ष ५० के विशेषाङ्कों के सम्बन्ध में सूचनीय है कि 'चण्डी' वर्ष ५० में कुल चार विशेषाङ्क, प्रकाशित होंगे। यथा—**१ नवरात्र-कल्पतरु, २ श्री काली-कल्पतरु, ३ श्रीललिता-त्रिशती** और **४ शाबर-मन्त्र-संग्रह (भाग २)**। '**नवरात्र-कल्पतरु**' हम सभी सदस्यों की सेवा में भेज चुके हैं। **श्रीकाली-कल्पतरु, श्रीललिता-त्रिशती, शाबर-मन्त्र-संग्रह (भाग २)** सभी सदस्यों की सेवा में रियायती मूल्य की वी. पी. द्वारा दिसम्बर ९१ में भेजा जाएगा। पूर्व-घोषित हिन्दी तन्त्रसार 'चण्डी' के ५१ वें वर्ष में विशेषाङ्क के रूप में प्रकाशित होगा। शाबर-मन्त्र-संग्रह (भाग २) का प्रकाशन-कार्य प्रारम्भ हो गया है। जिन बन्धुओं के पास प्राचीन व प्रामाणिक मन्त्रों का संग्रह हो, वे कृपया उन्हें शीघ्र-से-शीघ्र हमारे पास प्रति-लिपि कर भेजने की कृपा करेंगे, जिससे हम उन्हें प्रकाशित कर सकें।

परम उज्ज्वल एवं प्रभाव-शाली प्रतीक—

वन्दे मातरम्

सकलार्थ-सिद्धि-प्रद महा-मन्त्र

'स्वाधीनता'–अभ्युदय की जननी है। उसी के प्रकाश में आत्मा––महा-दुर्गा की जीवन-दायिनी स्फुरणा प्राप्त होती है। 'जीवन' क्या है मानो 'आत्म-विकास' है, जो जीवन को 'शक्ति-सम्पन्न' रखते हुए पूर्णता को प्राप्त होता है और सर्व-मय होकर संसार को तृप्त और आनन्द-मय बना देता है। उस आनन्द-मयी परमेश्वरी जगन्माता को कोटिशः वन्दना है, जिसके कृपा-कटाक्ष-रूपी भृकुटि-विलास से सारे विश्व का रञ्जन हो रहा है।

विश्व-मञ्च, शक्ति-पीठ––'श्री-चक्र' में सारी दुनिया––प्राणी-मात्र ग्रथित है। अपने स्थान, कर्त्तव्य-पालन एवं नैतिक मार्ग से सभी प्राणियों को अपनी मञ्जिल––अपनी यात्रा पूरी करनी है। मार्ग भिन्न-भिन्न हो सकते हैं, परन्तु गन्तव्य स्थान तो एक ही है। उसका पता एक-मात्र **महा-माया, परा-विद्या, ब्रह्म-विद्या, उपनिषद् माता** ही बता सकती है। इसी से उसे **'विद्या-माया'** कहा गया है। उसी का दूसरा रूप **'अविद्या-माया'** है, जिसका स्थूल रूप—**'नित्यैव सा जगन्मूर्ति'** के रूप में दृष्टि-गोचर हो रहा है। इन अनन्त विभिन्नताओं में एक अभिन्न वस्तु निहित है, जिसे **'सूत्रात्मा' 'अन्तर्यामी'** भी कह सकते हैं। वही **'श्री दुर्गा-तत्त्व'** है, जिसके जाने-समझे बिना जीवन-यात्रा सफल अथवा कृतार्थ नहीं हो सकती।

यह विषय मुख्यतः भाव-गम्य है। सभ्यता का प्रसङ्ग है। इसका सम्बन्ध **'मानवता की साधना'** से है, न कि उसकी रचना से। एक 'आदि-शक्ति' के सभी स्फुलिङ्ग मात्र हैं, जिसकी प्रेरणा तथा सहयोग से सभी मानव-सुविधाएँ उपलब्ध होती हैं। इसी साधन - प्रणाली को **'योग'** अथवा **'साधना'** कहते हैं। बिना सत्यान्वेषी हुए, इसका पता पाना दुस्तर ही नहीं, असम्भव-सा है। **'सत्य'** ही 'जीवन' है और उसका आधार भी वही है। उसकी सत्ता ही 'महा-शक्ति' के रूप में जगत् का नियन्त्रण कर रही है। उस सत्ता महा-माया जगज्जननी की अनुकम्पा प्राप्त करना—जीवन-प्रसाद एवं 'पुष्टि' के लिए अत्यावश्यक है। इसका हमारे **'राष्ट्रीय गान'—'वन्दे मातरम्'** से घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह वह **'नाद'** है, जिससे आत्मा अनु-प्राणित होती है तथा शक्ति - सम्पन्न होकर अपना कार्य सम्पादन करती है।

'माता' से तात्पर्य है जगत् की जननी का, जो आद्या शक्ति सृष्टि, पालन और संहार-रूपी विलास नित्य निरन्तर करती रहती है। यह उसका स्वभाव अथवा प्रकृति है। इसका विधान तथा नियम अबाधित रूप से चलता रहता है। इसे जानने और मानने से अर्थात् बरतने से जीवन-यात्रा सुलभ तथा सुफल होती है।

किसी वस्तु को सम्यक् रूप में जानना ही 'ज्ञान' है तथा न जानना ही 'अज्ञान'। यही **'विद्या माया'** तथा 'अविद्या माया' के नाम से प्रसिद्ध है। वह परमेश्वरी योग-माया, महा-माया इन दोनों के परे **परमानन्द-मयी** है। अतएव 'सर्व-वन्द्या' है।

अब प्रश्न यह उठता है कि उस परमानन्द-मयी तक पहुँच कैसे हो? इसके लिए 'वेद' में अनादि-काल में १ कर्म, २ उपासना और ३ ज्ञान-रूपी--तीन सीढ़ियाँ बताई गई हैं। किसी कर्म को नित्य नियमित रूप से, दीर्घ काल तक करते रहने के बाद उसमें एक 'रति' पैदा होती है। उसी को **'उपासना'** अथवा **'भक्ति'** कहते हैं। इस 'भक्ति' से सत्यासत्य-रूपी निश्चय अनुभव से सिद्ध हो जाता है और मानव प्राणी 'शान्त' एवं 'आनन्द-मय' हो जाता है। यह कुछ कठिन और विशुद्ध मार्ग है। इसका अभ्यास सदियों की गुलामी के कारण, अब नष्ट-भ्रष्ट हो चुका है। सार्वजनिक रूप में, इसका अस्तित्व रह नहीं गया है। मिथ्याचार, पाखण्ड, निष्प्राण तथा अव्यावहारिक हो जाने के कारण, अब 'भारतीय गण-तन्त्र' के व्यावहारिक जीवन में यह मार्ग कोई स्थान नहीं रखता। इस रिक्त स्थान की पूर्ति कैसे हो?

आदि-नाथ परम कारुणिक सदा-शिव ने करुणा-मयी माता की वात्सल्य-रूपी प्रेरणा अथवा जिज्ञासा के उत्तर में निर्बल प्राणियों के लिए एक सुलभ साधन-पथ की व्याख्या कर रखी है, जो **'तन्त्र-शास्त्र'** के नाम से जगत् में प्रसिद्ध साहित्य में छिपा पड़ा है। यही 'निगम-आगम'—दो प्रतिपादित मार्ग अनादि काल से वेद-विहित चले आ रहे हैं। समय के प्रभाव से किसी काल में एक प्रधान हो जाता है, तो किसी काल में दूसरा। ये दोनों ही **'योग-मार्ग'** हैं अर्थात् 'जीवात्मा' और **'परमात्मा'** को मिलानेवाले।

वैदिक पद्धति सनातन वर्णाश्रम होने पर भी इस कलि-काल में सर्व-साधारण के लिए व्यवहार-सिद्ध नहीं हो रही है, यह स्वीकार करने में किसी भी निष्पक्ष प्राणी को आपत्ति नहीं होगी। अतएव अब दूसरी वैदिक 'तान्त्रिक पद्धति' स्वीकार करने का समय आ गया है, जो सरल और स्वाभाविक है।

'प्राप्ते भैरवी-चक्रे तु, सर्वे वर्णाः द्विजोत्तमाः'--कितनी आदर्श उक्ति है। इसका भावार्थ यह है कि निष्ठा-पूर्वक माता की शरण में आते ही सभी 'जीव' पावन पथ पर आरूढ़ हो जाते हैं। 'गीता' में भी आनन्द-कन्द श्रीकृष्ण-चन्द्र के श्री-मुख से ऐसा ही उद्गार निकलता है (अध्याय १८ श्लोक ६६)—

'सर्व-धर्मान् परित्यज्य, मामेकं शरणं गच्छ। अहं त्वां सर्व पापेभ्यो, मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

अर्थात्--**सब धर्मों को छोड़ अकेले, मेरी ही सेवा में आ युक्त।**
मत कर शोक—तुझे मैं सारे, पापों से कर दूँगा मुक्त ॥

स्वतन्त्र भारत की राष्ट्र-भाषा के आदि-कवि ऋषि तुलसीदास जी भी यही कहते हैं—**"मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा, किये कोटि जप योग विरागा"**। यही अनुराग-पथ--तन्त्र में विशेष रूप से उपदिष्ट है। किसी तन्त्र, मन्त्र अथवा यन्त्र को अनुप्राणित करनेवाले यथार्थ रूप में **'श्रद्धा'**, **'निष्ठा'** तथा **'विश्वास'** ही हैं। विधि-वत् तन्त्र-मन्त्र-मार्ग को अपनाने से शीघ्रता होती है और विधि-हीन होने से लक्ष्य-सिद्धि में देर होना सर्वथा सम्भव है।

यह विषय 'सभ्यता' का जनक है। विधि-वत् जीवन ही मानव तथा सभ्य जीवन है। विधि-हीन जीवन तो पाशविक जीवन है। अब प्रश्न उठता है कि 'सभ्यता' का आधार क्या है? 'जीवात्मा' अथवा 'भौतिक सृष्टि' या 'शरीर'? निस्सन्देह 'जड़' चेतन का आधार नहीं हो सकता। जब होगा, तब 'चेतन' ही जड़ का आधार होगा। 'सूक्ष्म' ही स्थूल में व्यापक हो सकता है, न कि 'स्थूल' चेतन में। फिर 'जड़' नियन्त्रण का कार्य नहीं कर सकता। इसके लिए 'चेतन' की ही नितान्त आवश्यकता होती है। नियन्त्रण ही सभ्यता है और अनियन्त्रण ही असभ्यता या पशुता है।

अब निश्चय यह करना है कि हमारी 'भारतीय सभ्यता' क्या है? जैसा कि नाम ही से ज्ञात होता है, हमारा देश 'मातृ-भूमि' के नाम से प्रसिद्ध है, न कि 'पितृ-भूमि' के नाम से, जैसा कि संसार में अन्यत्र दीख पड़ता है। उस चैतन्य तत्त्व की सत्ता ही 'शक्ति-रूप' से सर्वत्र व्याप रही है और जो कुछ भी इन्द्रिय-गोचर अथवा बुद्धि-गम्य हो रहा है, सबकी वही जननी है। अतः उसे जाग्रत् करना, उसकी आराधना करना प्रत्येक कल्याण-कामी सभ्य प्राणी का मुख्य कर्तव्य है।

'राष्ट्रीय-गान' का मानव जीवन से अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। राष्ट्र के अनन्त संस्कारों का यह राष्ट्रीय सङ्गीत एक परम उज्ज्वल तथा प्रभाव - शाली प्रतीक है। इसके 'नाद' पर राष्ट्र के प्राणी राष्ट्र-रक्षा के लिए पतिङ्गों की तरह सहर्ष आत्म-बलिदान कर देते हैं। यह 'राष्ट्रीय-गान' अत्यन्त सुलभ रीति से नागरिकों को त्याग तथा सच्चे प्रेम की अनुपम शिक्षा देता है, जिससे उस राष्ट्र के पास निर्बलता फटकने तक नहीं पाती। 'निर्बलता' एक महान् पाप है, जो निश्चित रूप से अधोगति की ओर ले जाता है। 'सबलता' ही पुरुषार्थ है, जो जीवन का वास्तविक लक्ष्य है। किसी वस्तु को प्राप्त करने का एक-मात्र साधन 'पुरुषार्थ' ही है।

अब यहाँ एक और सूक्ष्म विवेचन कर लेना चाहिए, अन्यथा अर्थ का अनर्थ हो सकता है। 'बल' या शक्ति दो प्रकार की होती है—१ आसुरी तथा २ दैवो। आसुरी बल हानि-कारक तथा सत्या-नाशी है यथा 'रावण' किन्तु दैवी बल कल्याण - कारी तथा पौष्टिक है यथा 'राम'। दैवी बल 'चेतन'-प्रधान है, अतएव हित-कारी है और आसुरी-बल 'जड़'-प्रधान है, अतएव दुःख-दायी है। हमारा भारत तो 'गुरु' देश है, जहाँ विश्व में सर्व-प्रथम ज्ञान-निष्ठा कायम हुई। काल - चक्र के प्रभाव से इसकी गति-विधि भले ही बदलती रही हो, परन्तु इसका संस्कार जैसा है, इसकी ख्याति भी वैसी ही प्रसिद्ध है। अतएव भारत को इस 'दैवी - मार्ग' पर चलने का स्वभाव-सिद्ध अधिकार है।

भारत की स्वाभाविक प्रवृत्ति 'दैवी' है। तभी तो यहाँ 'ज्ञान' का प्रथम उद्गम हुआ, उपनिषद्-माता सर्व-प्रथम यहीं प्रगट हुई। अतएव यह परम आवश्यक है कि उस आदि - माता जगज्जननी महा-लक्ष्मी का हम लोग प्रेम और श्रद्धा के साथ स्मरण एवं वन्दना करें, जिसके कृपा-कटाक्ष से हम लोगों का अर्थात् राष्ट्र का जीवन सफल एवं सार्थक हो—**'बुद्धिर्यस्य बलं तस्य, निर्बुद्धेस्तु कुतो बलं ?'—'जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना, जहाँ कुमति तहँ विपति निधाना।'** श्रद्धा और प्रेम में एक अपूर्व चुम्बक-शक्ति है, जो एक महान् आकर्षक विद्युत् है। उसकी प्रभा से सब कुछ देदीप्यमान हो उठता है।

यही है हमारा राष्ट्रीय सङ्गीत—**'वन्दे-मातरम्'**, जो किसी परम स्वदेश-भक्त के हृदय-कुहर से परम विकट परिस्थिति में निकला है। इसका अमित प्रभाव प्रत्यक्ष ही है। इसने क्या नहीं किया?

[शेष पृष्ठ ६ पर]

भौतिक एवं आध्यात्मिक सुखों की कुञ्जी :
वन्दे मातरम्

❁ 'कुल-भूषण' पं० रमादत्त शुक्ल

महा-मन्त्र–'वन्दे मातरम्' के मर्म को हृदयङ्गम करनेवाले सहज ही समझ सकेंगे कि यह **महा-मन्त्र** भौतिक एवं 'आध्यात्मिक' दोनों सुखों की प्राप्ति में कितना बड़ा सहायक है। विश्व के श्रेयत्व से विश्व-माँ की गोद में पहुँचा देने के लिए प्रार्थना करना रहस्य से खाली नहीं है। इस रहस्य को समझना उतना कठिन भी नहीं है, केवल समझने की चाह होनी चाहिए।

साधारण-सी बात है। किसी से भी पूछिए--प्राणी किस **महा-मन्त्र** को लेकर इस जगती-तल पर अवतरित होता है? उसकी प्रथम पुकार क्या होती है? किस ध्वनि के सहारे वह अपने समस्त अभावों की पूर्ति करवा पाता है?--निश्चय ही उत्तर मिलेगा--**'माँ !'**

माँ ही का नाम वह **महा-मन्त्र** है, जिसके सहारे जीव इस भयानक कर्म-भूमि संसार में आविर्भूत होता है और यह तो दिन - प्रतिदिन के अनुभव की बात है कि माँ-माँ जपता हुआ शिशु सभी बाधाओं को पार करता हुआ पुरुष बन जाता है तथा पुरुष बन कर माता के आशीर्वाद से महा-पुरुष तक की पदवी प्राप्त कर लेता है।

इस प्रकार जीवन के प्रारम्भ से लेकर जब तक सम्भव होता है, व्यक्ति **'माँ'** को पुकार कर अपनी कमियों की पूर्ति करता रहता है। यही नहीं, भौतिक शरीर-धारिणी माता के न होने पर भी केवल **'माँ'** नाम के सहारे वह अपने दुःखों, पीड़ाओं और असफलताओं को भी भूल जाता है। ऐसी दशा में भौतिक सुख की प्राप्ति में **'माँ'** - मन्त्र से बढ़कर और कौन साधन हो सकता है?

रहा परम सुख--अलौकिक आनन्द। सो माँ की गोद में लाड़-प्यार पानेवाले भाग्य-शाली व्यक्तियों के तो यह अनुभव की ही बात है। उसे कहकर क्या बताया जाय और शायद बताया भी न जा सके, तथापि इतनी याद तो दिलाई ही जा सकती है कि 'माता' को ही समझकर **'विश्व-माँ'** की ओर व्यक्ति का ध्यान आकृष्ट होता है--उन **'विश्व-माँ'** की ओर, जिनके स्मरण मात्र से 'द्वैतत्व' और 'वैषम्य' का तिरोभाव हो जाता है—'समता', 'एक-दृष्टि' एवं 'तत्त्व-ज्ञान' पर अधिकार मिल जाता है। और यही अलौकिक सुख की सीमा है।

अतएव **'वन्दे मातरम्'** उभय सुख--भौतिक एवं आध्यात्मिक--की कुञ्जी ही है।

धरती पर जन्म लेते ही मनुष्य सुख की खोज में व्याकुल हो जाता है। प्रारम्भ में वह वासना-जन्य भौतिक सुखों को पाने के लिए यत्न-शील रहता है। फिर ज्यों-ज्यों उसकी विचार और धारणा-शक्ति अनुभव-द्वारा समुन्नत होती है, त्यों-त्यों उसका ध्यान अलौकिक सुख—'आनन्द' की ओर खिंचता जाता है। यह बात प्रत्येक मानव के जीवन में देखी जा सकती है।

बचपन में खेल-कूद, मीठी - चटपटी चीजें और बढ़िया भड़कीली पोशाक आदि सुख के स्रोत होते हैं; अतएव जीवन के उस उषा-काल में प्रायः सभी व्यक्ति तत्सम्बन्धी साधनों में लिप्त पाए जाते हैं। इसी प्रकार यौवन में सबसे अधिक सुख मिलता है, इन्द्रियों के सन्तोष से। फलतः युवा होकर मनुष्य स्वभावतः दर्शन, श्रवण, स्पर्श आदि सुखों के चक्कर में पड़ जाया करते हैं। जीवन के सन्ध्या-काल में जब मनुष्य का सारा शरीर शिथिल पड़ जाता है--उसमें किसी प्रकार का ओज नहीं रह जाता, तब वह ऐसे साधनों के प्रति लोलुपता प्रदर्शित करता दिखाई देता है, जो उसे किसी प्रकार का सम्बल या सहारा प्रदान कर सकें।

जीवन के उक्त तीन चरणों को पार करते-करते मनुष्य को जहाँ अनेक प्रकार की परिस्थितियों और समस्याओं का ज्ञान प्राप्त होता है, वहाँ उसे इस बात का भी अनुभव हो जाता है कि जिस 'सुख' के पीछे वह दौड़ता है, उसे पाकर भी उसे सच्चे अर्थों में सुख नहीं मिल पाता। उस सुख से भी अधिक सुख पाने की लालसा उसे आतुर बनाए ही रखती है। यहाँ तक कि आतुरता-ही-आतुरता में उसकी वह अवस्था भी आ जाती है, जिसमें प्राप्त सुखों के अनुभव की भी क्षमता उसमें नहीं रह जाती। जो व्यक्ति अधिक सौभाग्य-शाली होते हैं, वे इस अवस्था के पहुँचने के पहले ही सचेत हो जाते हैं और भौतिक सुखों को उनके उपयुक्त ही महत्त्व देते हुए उस परम सुख की प्राप्ति के लिए तत्पर होते हैं --जो चिरन्तन, शाश्वत एवं नित्य है।

[पृष्ठ ४ का शेष]

कौन जानता था कि भारत इतने शीघ्र स्वतन्त्र होगा ? परन्तु ऐसा ही हुआ। यही है हमारा महा-मन्त्र गायत्री--'**वन्दे मातरम्**'।' इस सत्य के आश्रय में सकलार्थ-सिद्धि है। इस महान् सत्य एवं हित की बात को प्रत्येक भारत-वासी को हृदयङ्गम करना चाहिए।

माँ प्रेम की मूर्ति हैं; सहायता की खान हैं; धैर्य की धरोहर हैं। उनका आश्रय लिए बिना व्यक्ति-गत या राष्ट्र-गत जीवन - बेड़ा पार नहीं लग सकता। बाल - जीवन पर दृष्टि - पात करने से यह स्पष्ट हो जाता है। बुद्धि में प्रेम-रूपी पुट दिए बिना तरलता नहीं आ सकती और बिना तरलता के कोई वस्तु पनप नहीं सकती। यह समझने में किसी भी विचार-शील प्राणी को कठिनाई नहीं हो सकती।

'गण - तन्त्र' एक सामूहिक संस्था है, जिसका हृदय या प्राण '**वन्दे मातरम्**' है--'**सङ्घे शक्तिः कलौ युगे**।' इसके सदृश दूसरा कोई महा - मन्त्र नहीं है, जिसके द्वारा भारतीय हृदय को आकृष्ट कर सकें। इसके द्वारा बड़ी सरलता से प्रेम का सरल पाठ भारतीय हृदय को पिलाया जा सकता है। प्रेम के अभाव में कभी भी कोई सुदृढ़ और स्थायी सङ्गठन बन नहीं सकता। 'प्रेम' ही सत्य है और 'सत्य' ही आधार है। भला झूठ का अस्तित्व क्या और कहाँ ! यह एक महान् भ्रम है, जो '**वन्दे मातरम्**' के वास्तविक अनुराग के बिना मिट ही नहीं सकता।

योगि-राज श्री भूपेन्द्रनाथ सान्याल वचनामृत–

माँ की कथा

एक चुटकी नमक नदी या समुद्र में डाल देने से वह नमक भले ही दिखाई न दे, किन्तु वह नष्ट नहीं होता। वह खो भी नहीं जाता। समुद्र की प्रत्येक बूंद में यह नमक प्रविष्ट हो जाता है। ठीक इसी प्रकार 'उसको' दे देने पर हमारा यह मन हजार झंझटों के बीच पड़ने पर भी नष्ट नहीं होता, वह संसार के बीच खो भी नहीं पाता। इसीलिए तो मन को 'उसमें' रखने का अभ्यास करना पड़ता है। झाड़-तूफान नहीं उठेगा, ऐसी बात नहीं। समय-समय पर झाड़-तूफान उठने पर, ध्यानाभ्यस्त चित्त झाड़-तूफान के साथ झूला झूलते हुए भी 'उसको' लक्ष्य बनाकर रख सकता है।

समुद्र में जिस प्रकार झाड़ और तूफान आते हैं, हमारे संसार में भी कितने ही झाड़-तूफान उठते रहते हैं। अनन्त समुद्र में प्रत्येक तरङ्ग के साथ कितने ही जल-कण (वे भी समुद्र के ही अङ्ग हैं) शिर ऊपर करके उठते हैं और फिर उसी समय समुद्र में मिल जाते हैं। उठकर बाहर निकलने पर भी वे बाहर नहीं हो पाते।

अनन्त समुद्र के समान हमारी माँ अनन्त-ब्रह्माण्ड-व्यापिनी हैं, अनन्त चिन्ता-तरङ्ग-तरङ्गिणी हैं और हम लोग? समुद्र के वक्ष-स्थल पर उच्छ्वसित तरङ्ग के अनन्त जल-कणों के समान असंख्य जीव-शिशु माता के वक्ष पर उछलते-कूदते हैं। हम सभी उसी के तो आनन्द हैं। हम लोग उछल-कूद कर जाएँगे कहाँ? हम चाहें कहीं भी कूद क्यों न पड़ें, हम तो माँ की ही छाती पर खेलते - कूदते हैं। समझ न पाने से ही तो जीव को इतना दुःख है! जो इसकी समझ रखते हैं, झाड़-झपाटा उन्हें डुबा नहीं सकता, बाहर फेंक भी नहीं सकता। इसीलिए निर्भय होकर माँ की गोद में—इस संसार में घूमते-फिरते हैं। उनके कर्माकर्म और धर्माधर्म का संस्कार भी कुछ नहीं रहता।

आकाश में भी कहीं दाग पड़ता है? तब, समय - समय पर जो पड़ा हुआ दाग देखते हो, वह तो मन की कल्पना भर ही है। वह मन जितने दिनों तक है, वह कल्पना भी उतने ही दिनों तक रहती है। उसके लिए करना क्या होगा, जानते हो?

इस मन को लेकर उसके गम्भीर लाल युगल चरणों में मिला देना होगा। जिस प्रकार माँ के चरणों में चन्दन लगाते हो, कम-से-कम उसी प्रकार मन को चन्दन के समान ही माँ के चरणों में लगा दो। ऐसा होते ही और कोई गड़बड़ी नहीं होगी। मन की सारी रञ्जनी शक्ति देकर माँ के दोनों लाल चरणों को और भी लाल बना दे सकते हो। हमारी सभी वासनाएँ यदि माँ के चरणों में आलता (महावर) होकर उसके युगल चरणों को अति - रञ्जित कर सके, तो वासनाओं की ज्वाला में जलना नहीं पड़ेगा ।

वासना जलती क्यों है, जानते हो ? माँ को भूल जाते हो, तभी तो वह (वासना) ज्वाला के समान होकर आत्म-प्रकाश करती है। अरे भाई, मन को तो हम नहीं बनाते! वह तो उसकी वस्तु है, उसकी ही है। हम लोग यह बात भूलकर जब उसको (मन को) 'हमारा' कहकर अभिमान करते हैं, तभी सब गड़बड़ हो जाता है। 'हमारा मन 'सङ्कल्प' और 'विकल्प' करता है। उसे ऐसा करने का मौका नहीं देंगे। उसे शासन-द्वारा ठीक करना होगा।' इत्यादि मूर्खता से ही तो हम दुःख को घर में बुला लाते हैं।

चींटियों की पंक्ति चली जाती है—उसके ऊपर पैर डालने से तो वह कुटकुटा कर काटेगी ही, ऐसा क्यों किया जाय ? मन में तरङ्ग उठे, तो तुम उस तरङ्ग के साथ साथ झूलो और एक बार आँख खोल कर देखो, वह तरङ्ग है क्या ? और किसकी छाती पर बैठकर तुम झूल रहे हो ? यह दृष्टि जब नेत्रों में फूट पड़े, तो ठीक है। संसार तो हमारा है नहीं—संसार तो मां का है और हम भी तो उसी के हैं, यह बात न भूलने से फिर किसी प्रकार की भूल नहीं होगी।

यदि उक्त भाव में लीन हो सको, तो तुम्हारी सभी चिन्ताओं और कार्यों में मां की पूजा हो जायगी। अलग भाव से पूजा की आवश्यकता ही नहीं होगी।

राज-योग

मूल्य ४ रु०

१ पौड़ी (गढ़वाल) नीलकण्ठ भगवान् के दर्शन

पौड़ी (गढ़वाल) में ऋषिकेश से १४ किलोमीटर दूर 'पौड़ी' (गढ़वाल) जिले के 'यमकेश्वर' प्रयाग में मणि-कूट, विष्णु-कूट और ब्रह्म-कूट पर्वतों की तलहटी में एक वट-वृक्ष के नीचे एक छोटा साधारण-सा शिव-लिङ्ग है, जिसे 'नील - कण्ठ महादेव' के नाम से जाना जाता है। श्रद्धालु भक्त यहाँ बारहों महीने भगवान् नील-कण्ठ के दर्शनों के लिए देश-भर से आते हैं। सावन के महीनों में, विशेषकर सोमवार के दिन यहाँ भक्तों की भारी भीड़ जुटती है। प्रत्येक सोमवार को मन्दिर दिन-रात खुला रहता है और भोले बाबा (नील-कण्ठ) पर गङ्गा-जल चढ़ानेवालों की इतनी लम्बी कतार लगती है कि समाप्त होने पर नहीं आती। एक लाख से अधिक यात्री सावन के प्रत्येक सोमवार को यहाँ आते हैं।

इस वर्ष सावन के पहले सोमवार को देश भर से आए एक लाख स्त्री-पुरुषों ने खड़ी पैदल चढ़ाई चढ़कर भगवान् नील-कण्ठ को गङ्गा-जल चढ़ाया। अनुमान है, अगले तीसरे और चौथे सोमवार को यह संख्या सवा लाख तथा डेढ़ लाख तक पहुँच जाएगी।

'लक्ष्मण झूले' से चौदह किलोमीटर पैदल कठिन मार्ग पर यात्रियों की सुरक्षा के लिए पुलिस के जवान हाथों में वायरलेस लिए नियुक्त हैं, जो भीड़ की सूचना अगली चौकियों तक पहुँचाते हैं। मार्ग में चाय-पानी की दुकानें हैं, यात्री कुछ देर सुस्ता लेते हैं। **बाबा नील-कण्ठ की जय**--का नारा लगाते यात्री कठिन खड़ी चढ़ाई चढ़ते हैं और दर्शन कर वापस आनेवाले यात्री जानेवालों का साहस बढ़ाते हुए कहते हैं--'बस, थोड़ी दूर और।' अभिवादन भी 'बाबा नील - कण्ठ की जय' के उद्घोष से होता है।

पौराणिक कथा के अनुसार देव-राज इन्द्र से कुपित होकर महर्षि दुर्वासा ने देवताओं को शक्ति और सामर्थ्य-हीन हो जाने का शाप दिया! देवताओं के शक्ति-हीन हो जाने पर असुरों ने देव-लोक पर चढ़ाई कर दी। देवता घबरा कर भगवान् विष्णु की शरण में गए। विष्णु ने उन्हें समझाया कि 'ऐसे समय में असुरों से सन्धि कर उन्हें समुद्र-मन्थन का सुझाव दें। 'समुद्र-मन्थन' से अमृत मिलेगा, तुम उसे असुरों से बचाकर पी लेना। उसके बाद युद्ध करना'। देवताओं का प्रस्ताव असुरों को भी अच्छा लगा और वे अमृत के लिए 'समुद्र-मन्थन' को तैयार हो गए।

'समुद्र-मन्थन' से हलाहल-विष निकला। देव-असुर--सभी विष से डर कर भाग खड़े हुए। तब शिव ने वहाँ जाकर उसे एकत्र कर अपने होठों से लगा लिया, पर उसे गले से नीचे नहीं उतरने दिया। इस विष से उनका कण्ठ नीला पड़ गया। तभी से वे 'नील - कण्ठ' कहलाए। विष - पान करते समय जो

बूंदें पृथ्वी पर गिरीं, उनसे भयानक विषैले जीव पैदा हुए। विष से बैचेन शङ्कर कैलाश छोड़ 'मणि-कूट' पर्वत की तलहटी पर एक वट-वृक्ष के नीचे समाधि लगाकर साठ हजार वर्षों तक बैठ रहे। उधर पार्वती वायु-मार्ग से उन्हें खोजने निकलीं, तो उन्हें समाधि में लीन पाया। हिलाने - डुलाने पर भी शिव की समाधि नहीं टूटी, तो वे भी पास के 'ब्रह्म-कूट' पर्वत की चोटी पर तपस्या करने बैठ गईं। उन्होंने वहाँ बीस हजार वर्षों तक तपस्या की।

इसी बीच अमृत पीकर आए देवता कैलाश - पति को खोजने निकले। उन्होंने शिव को उस स्थिति में देखा, तो वे भी पास की पर्वत-मालाओं में तपस्या कर भोलेनाथ की समाधि खुलने की प्रतीक्षा करने लगे। समाधि खुलने पर देवताओं ने उनसे कैलाश चलने की बात की। उनके उठते ही वहाँ एक 'स्वयम्भू लिङ्ग' प्रगट हुआ। इस लिङ्ग की प्रथम पूजा पार्वती ने, बाद में ब्रह्मा-विष्णु एवं अन्य देवताओं ने की। देवताओं द्वारा पूजित इस 'स्वयम्भू लिङ्ग' की पूजा सभी दुःखों को दूर करने में सक्षम है। यहाँ सावन मास में हरिद्वार से **'ब्रह्म-कुण्ड'** के जल को काँवरियों में ले जाकर 'नील-कण्ठ महादेव' पर चढ़ाने का माहात्म्य है।

'नील-कण्ठ महा-देव' के मन्दिर की देख-रेख और चढ़ावा हरिद्वार के 'महा-निर्वाणी पंचायती अखाड़े' के अधिकार-क्षेत्र में है।

२ नासिक में कुम्भ-पर्व

'दक्षिण की गङ्गा' कही जानेवाली गोदावरी के तट पर आयोजित कुम्भ - पर्व में भाग लेने के लिए साधु-संन्यासियों के अखाड़े तैयार हो रहे हैं। शास्त्रीय मर्यादा के अनुसार यहाँ कुम्भ - पर्व के योग ४ अगस्त, ९१ से प्रारम्भ हो चुके हैं, किन्तु स्नान-पर्व २५ अगस्त से प्रारम्भ होंगे।

पौराणिक मान्यता के अनुसार गौतम ऋषि ने तपस्या कर गोदावरी को स्वर्ग से पृथ्वी पर अवतरित किया था। अतः गोदावरी का नाम 'गौतमी' भी है। 'रामायण' के 'अरण्य-काण्ड' में वर्णित राम-चरित की महत्त्व-पूर्ण घटनाएँ गोदावरी के किनारे यहीं हुईं। चित्रकूट छोड़ने के बाद भगवान् राम ने जिस 'पञ्च-वटी' में निवास किया, वह गोदावरी के तट पर उसी स्थान पर स्थित है, जहाँ 'कुम्भ' मनाया जाता है। 'सीता-गुफा' के नाम से प्रसिद्ध स्थान को 'पञ्च-वटी' में राम-लक्ष्मण और सीता का निवास भी समझा जाता है। वह 'पञ्च-वटी' तो अब नहीं है, किन्तु उन पाँच वट-वृक्षों का विस्तार बरगद के बीसियों पेड़ के रूप में है।

शूर्पणखा की नाक काटने, खर-दूषण का वध करने, मारीच के माया-मृग बन कर आने, रावण द्वारा सीता का अपहरण और राम द्वारा सीता के विरह में विलाप की लीला भी 'नासिक', 'पञ्च-वटी' और 'जन-स्थान' में हुई। ये तीनों स्थान पास-पास ही हैं।

यों तो पूरे वर्ष भर तीर्थ-यात्री यहाँ आते हैं लेकिन सावन के महीने में उनका उत्साह अधिक दिखाई देता है। इस वर्ष बारह वर्ष बाद आनेवाला 'कुम्भ-पर्व' यहाँ मनाया जा रहा है। इसलिए और भी अधिक श्रद्धालु-जनों का उत्साह उमड़ना स्वाभाविक है।

शिव के बारह ज्योतिर्लिङ्गों में से एक यहाँ त्र्यम्बक पर्वत पर स्थित है। 'त्र्यम्बकेश्वर' नाम से विख्यात इस स्थान की यात्रा भी इन दिनों भक्तों के लिए एक आकर्षण है। गोदावरी इसी पर्वत से निकली है। 'कुम्भ-पर्व' में आनेवाले सभी सम्प्रदाय के संन्यासियों में शैव साधु और दश-नामी संन्यासी 'त्र्यम्बकेश्वर' में ही पड़ाव रखेंगे और वहीं स्नान आदि करेंगे। अन्य सम्प्रदाय के संन्यासी 'कुशावर्त तीर्थ' में ठहरेंगे, इनमें उदासीन और निर्मल अखाड़े सम्मिलित हैं। वैष्णव सम्प्रदाय के तीनों अखाड़े– 'राम-दल', 'वैरागी' और 'अग्नि अखाड़े' पञ्च - वटी में ठहरेंगे। वहाँ राम-घाट पर ही उनके स्नान आदि भी होंगे।

'नासिक कुम्भ' के तीन प्रमुख स्नान हैं---पहला राजसी स्नान श्रावण शुक्ल पूर्णिमा (रविवार, २५ अगस्त)। दूसरा राजसी स्नान भाद्रपद की अमावास्या (रविवार, ८ सितम्बर) और तीसरा राजसी स्नान है भाद्रपद शुक्ल पञ्चमी (शुक्रवार, १३ सितम्बर) को।

प्रमुख स्नान भाद्रपद अमावास्या का माना जाता है। तदनुसार ८ सितम्बर को पड़नेवाले स्नान-पर्व पर सभी संन्यासी और सम्प्रदायों के अनुयायी अपने मत और मान्यता-भेद भुला कर एक साथ स्नान करते हैं। शेष स्नान-पर्वों को कुछ सम्प्रदाय मानते हैं, तो कुछ नहीं मानते।

नासिक और उज्जैन के 'कुम्भ-पर्व' (सिंहस्थ) में कुछ ही महीनों का अन्तर है। 'नासिक-कुम्भ' के लगभग आठ महीने बाद उज्जैन में 'क्षिप्रा' के तट पर 'सिंहस्थ-कुम्भ' होगा। सामान्यतः उज्जैन का 'सिंहस्थ' नासिक-कुम्भ से पहले पड़ता है लेकिन इस बार ग्रह-योग इस प्रकार हैं कि नासिक में 'कुम्भ' पहले हो रहा है। पौराणिक मान्यता के अनुसार सागर - मन्थन से निकला अमृत-घट भी उसी क्रम से उज्जैन और नासिक में रखा गया था। आकाशीय संयोगों ने उस क्रम को इस बार उलट दिया! यह विशेषता 'नासिक - कुम्भ' में ही देखी जा सकती है कि आकाश घटाटोप बादलों से भरा होता है, बारिश की झड़ियाँ लगी होती हैं और श्रद्धालु गोदावरी में स्नान करते रहते हैं!!

उज्जैन और हरिद्वार के 'कुम्भ' गर्मी के दिनों में आते हैं, जबकि प्रयाग-राज का 'कुम्भ' सर्दी के मौसम में। इस दृष्टि से भी 'नासिक-कुम्भ' अनूठा माना जाता है।

• श्रीललितासहस्रनाम •

मूल-मात्र, साधना-क्रम सहित, मूल्य १०-०० रु०

नवीन **तांत्रिक पंचांग** मूल्य ११-००

(१६ अप्रैल, १९९१ से ६ नवम्बर, १९९२ तक)

आज ही अपनी प्रति कल्याण मन्दिर प्रकाशन, प्रयाग–६ से मँगावें।

शत-वर्षीय ब्रह्मचारी जी महाराज

• पण्डित रामप्रकाश अवस्थी

"गाँव का जोगी जोगिना, आन गाँव का सिद्ध !"—कहावत का आशय यह है कि महान् पुरुषों को भी उनके क्षेत्र में वह सम्मान नहीं मिलता, जिसके वे अधिकारी हैं और जो उन्हें बाहर सहज-सुलभ होता है, किन्तु कहीं-कहीं इसके विलक्षण अपवाद भी दृष्टि - गत होते हैं। ऐसे ही एक अपवाद हैं—**शत-वर्षीय सन्त ब्रह्मचारी जी महाराज**, जो अपनी जन्म-भूमि ग्राम/पो० 'नार' के कारण **'नार के ब्रह्मचारी जी'** के नाम से दूर-दूर तक प्रसिद्ध हैं।

ब्रह्मचारी जी का जन्म उत्तर प्रदेश के 'कानपुर जनपद' की पश्चिमी सीमा के अन्तिम गाँव 'नार' में एक गरीब सदाचारी परिवार में हुआ था। पिता पं० मातादीन जी के समक्ष पैतृक कृषि के अति-रिक्त कोई अन्य विकल्प परिवार-पालन का नहीं था। उस समय कृषि के लिए पानी की व्यवस्था नहीं थी। अतः असिञ्चित कृषि से, जिसे 'धुरियाँ खेती' कहते हैं, जमीन्दार का भूमि - कर देने के बाद, वर्ष भर के लिए परिवार-पालन तक को भी पर्याप्त धन-धान्य सुलभ नहीं हो पाता था। तथापि अभाव की यह स्थिति परिवार में, किसी प्रकार का असन्तोष या अशान्ति लाने में समर्थ नहीं हुई। जो था, उसे ही प्रभु-प्रसाद मान, अतिथि-अभ्यागत के सत्कार के बाद माँ अन्नपूर्णा को शीश नवाकर ग्रहण करते थे।

ब्रह्मचारी जी के अग्रज श्रीविलास गाँव 'भवनपुर' के क्षत्रिय राजा के यहाँ भोजन बनाने जाते थे और 'ब्रह्मचारी' जी जङ्गल में पशुओं को चराया करते थे। ब्रह्मचारी जी बताते हैं कि "जङ्गल में जब अन्य कोई चरवाहा साथी उनके पास नहीं होता था, तो उन्हें आकाश से घण्टा-घड़ियाल बजने की ध्वनि स्पष्ट सुनाई देती थी तथा देवताओं के दर्शन होते थे।" महाराज जी यह भी बताते हैं कि अग्रज की जगह कभी-कभी उन्हें राजा साहब के यहाँ भोजन बनाने जाना पड़ता था। जिस दिन वे भोजन बनाते थे, उस दिन राजा साहब कहते थे कि 'आज ध्यान अच्छा लगा, भजन - भाव खूब हुआ।' राजा साहब 'श्रीमद-भागवत' और 'गीता' के अनुरागी एवं स्वाध्यायी थे। साधु-दर्शन एवं गङ्गा-स्नान के लिए बाहर जाते रहते थे। ब्रह्मचारी जी को भी राजा साहब अपने साथ प्रायः ले जाने लगे।

ब्रह्मचारी जी के अग्रज गृह-त्यागी साधु (श्रीधर आश्रम) बनकर तप हेतु जा चुके थे। जब ब्रह्म-चारी जी ने भी वैसा ही करने का सङ्कल्प अपने पूज्य पिता जी से प्रकट किया, तो अनुमति उन्होंने सहर्ष दे दी, किन्तु बाहर न जाकर गाँव में ही साधना करने का परामर्श दिया।

धन्य हैं वे सच्चे मही - सुर ! परमार्थ - पथ पर अपने दोनों पुत्रों को उन्होंने सहर्ष विदा कर दिया !! संसारी माँ-बाप की भाँति मोह-माया का जाल उन्होंने नहीं फैलाया।

पितृ-देव की अनुमति से 'बड़ी नार'—'छोटी नार' की २ कि० मी० की दूरी के बीच 'रिन्द नदी' के किनारे स्थित 'खेड़ा' पर ब्रह्मचारी जी ने एक 'झोपड़ी' एवं बाद में 'कुटिया' बनाई तथा समीप ही स्थित एक 'देवालय' का जीर्णोद्धार भी किया। इस मन्दिर के सम्बन्ध में किम्वदन्ती है कि नारद जी ने इसे अपने तपस्या-काल में स्थापित किया था। लोग 'नार' को 'नारद-पुरी' का ही अपभ्रंश मानते हैं।

इसके बाद तो कहानी अकथ्य है, किन्तु प्रत्यक्ष - दर्शियों के अनुसार बिना अन्न - जल के कभी हफ्तों 'रिन्द नदी' में तपस्या-लीन खड़े रहते, तो कभी सूर्य भगवान् के समक्ष कई - कई दिन खड़े रहते।

गुरु कोई था नहीं, अतः इस प्रक्रिया में दो बार मस्तिष्क-विकार भी हुआ, किन्तु उस काल में भी पूजा-पाठ की ही बातें करके रह जाते थे। इस अवस्था से मुक्ति दिलाते थे—'श्री चन्द्रशेखर आश्रम', ठाकुर-गाँव, इटावा (उ० प्र०) के राष्ट्रीय सन्त योगि-राज स्वामी सच्चिदानन्द जी सरस्वती, जो उन दिनों 'नार गाँव' से मात्र ३ मील पर सूर्य की भाँति प्रकाशमान थे। स्वामी सच्चिदानन्द जी ने गान्धी जी के साथ 'चम्पारण-सत्याग्रह' में जेल भोगी थी तथा राजेन्द्र बाबू, नेहरू जी, जगजीवन बाबू जैसे नेताओं से निकट का सम्पर्क था। योग, तन्त्र - मन्त्र, आयुर्वेद, सङ्गीत और मल्ल - विद्या आदि पर उनका समान अधिकार था। स्वामी सच्चिदानन्द जी का अधिक विवरण विषयान्तर होगा, अतः स्वतन्त्र लेख में उन महा-पुरुष का पुण्य स्मरण करूँगा।

ब्रह्मचारी जी जैसे महा-पुरुष पर कलम चलाना योग्य और ज्ञानी व्यक्ति का ही अधिकार है। मेरे जैसा अल्प बुद्धिवाला और सांसारिकता-ग्रसित ऐसी उच्च कोटि की विभूतियों को कैसे समझ सकता है ! फिर भी सम्पादक जी के अनुरोध पर यथा-शक्ति निवेदन कर रहा हूँ। **इस क्षेत्र में ब्रह्मचारी जी देवता-रूप में मान्य हैं, पूज्य हैं। उनके जीवन में 'प्रयोगों' का महत्त्व - पूर्ण स्थान रहा है। 'राम बैङ्क', 'पाठशाला', 'रसायन-शाला' आदि प्रयोगों से पर्याप्त जन-हित हुआ है। 'गौशाला' भी चल रही है।**

'नार गाँव' अभी भी यातायात के साधनों से दूर है। अतः **'झींझक'** कस्बे में, जो दिल्ली-हावड़ा रेलवे का एक स्टेशन है, अधिकांश समय रहते हैं। **'कानपुर-विधूना'** मार्ग पर स्थित तहसील **'रसूलाबाद'** कस्बे में भी उनके बहुत श्रद्धालु भक्त हैं। अतः वहाँ भी दर्शन हो जाते हैं। पैरों में सूजन, दर्द के स्थायी रोगी होते हुए भी साइकिल के कैरियर पर बैठकर और पैदल चलकर गाँवों में भक्तों की भावना पूरी करने जाते भी देखे जाते हैं। **'झींझक' और 'रसूलाबाद' में वृहद् मल्ल-शाला, यज्ञ-शाला, संस्कृत - पाठ-शाला, पुस्तकालय और वाचनालय स्थापित करने के लिए ब्रह्मचारी जी सक्रिय हैं। 'झींझक' में इस हेतु एक लाख मूल्य की भूमि क्रय की जा चुकी है और रसूलाबाद में भी भूमि - प्राप्ति की प्रक्रिया चल रही है।**

शाक्त-साधक और सिद्ध सन्त ब्रह्मचारी जी के द्वारा कैंसर - जैसे असाध्य रोग से मुक्ति दिलाने, ईश्वर-साक्षात्कार कराने की कई कथाएँ कही-सुनी जाती हैं, किन्तु ब्रह्मचारी जो द्वारा मना किए जाने के कारण यहाँ इनका उल्लेख मात्र किया गया है। दूर-दूर के लोग अपनी समस्याओं को लेकर प्रतिदिन उनके पास आते हैं और सबका समाधान होता है। ब्रह्मचारी जी कहते हैं कि--**सब संसारी काम को आते हैं। कोई भगवत् - प्राप्ति या ज्ञान प्राप्ति को नहीं आता।** आपका पता है : पण्डित सधारीलाल मिडिल स्कूल फार्म के पास, रसूलाबाद मार्ग, झींझक, कानपुर (देहात) उ. प्र.।

नमक, शकर, घृत, तेल, दूध, फल और मिठाई से अलग रहनेवाले इन सन्त का मुख्य भोजन है—भूना हुआ आटा, उबलते पानी में घोंट कर खाना, जिसे वे हलुआ कहते हैं। आँखों की ज्योति और दाँत सब दुरुस्त हैं, केवल पैर व्याधि-ग्रसित रहते हैं। कोई दवा नहीं खाते-पीते। पुस्तक-प्रेमी ब्रह्मचारी जी १२५ वर्ष की पूर्ण आयु प्राप्त करें, यही श्री जगदम्बा से प्रार्थना है।

साहित्य-सुधा-सङ्गम', बेल्हूपुर • इटावा (उ. प्र.)

कर्नाटक में सरस्वती के अवशेष

• डॉ० ए० जीवन जया

दक्षिण में **'कावेरी नदी'** से लेकर उत्तर में **'गोदावरी नदी'** तक फैला हुआ **'कर्नाटक'** प्रदेश आदि काल से परम्परागत रूप से न केवल धर्म, साहित्य और दर्शन - शास्त्र में समृद्ध है, अपितु शिल्प-कला में भी प्रमुख है। 'महा-भारत' और 'रामायण' जैसे प्राचीन प्रामाणिक ग्रन्थों में कर्नाटक राज्य का उल्लेख है। प्रस्तुत लेख में 'कर्नाटक' में प्राप्त भगवती सरस्वती को जो व्यापक प्रतिष्ठा प्राप्त रही है, उसी पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। माता सरस्वती शिक्षा, कला, संस्कृति एवं परम्परा की अधिष्ठात्री देवी प्रख्यात ही हैं। इसी कारण देवी सरस्वती की उपासना के फल-स्वरूप 'कन्नड़' भाषा बोलनेवाले 'कर्नाटक'-निवासी विशाल-हृदय और मीठी बोली बोलनेवाले तथा सु-संस्कृत हैं। कर्नाटक के छोटे-से-छोटे कार्य में भी देवी माता का स्मरण और पूजनादि किया जाता है।

१. **शृङ्गेरी-मठ में देवी सरस्वती :** जगद्-गुरु श्री शङ्कराचार्य का मठ **'श्री शारदा पीठम्'** नाम से प्रसिद्ध है। यह 'मठ' सनातन धर्म की स्मार्त्त-परम्परा एवं अद्वैत दर्शन के लिए विश्व-विख्यात है। यहाँ के अनेक मन्दिर प्राकृतिक सौन्दर्य एवं मनोरम वातावरण में दर्शनीय हैं। यह 'मठ' तुङ्गा नदी के किनारे **'चिकमगलूर'** की पश्चिम दिशा में ८८ कि० मी० की दूरी पर स्थित है। माता सरस्वती का ही एक नाम **'श्री शारदा'** है। बँगलोर, हैदराबाद, शिमोगा और चिकमगलूर से यहाँ के लिए बसें सुलभ हैं। निकट-तम रेल्वे स्टेशन **कादुर** है। किम्वदन्ती है कि कर्नाटक के इस स्थल पर ऋषि **ऋष्यशृङ्ग** के पिता ऋषि विभाण्डक का आश्रम था। यही कारण है कि इस स्थान को **शृङ्ग-गिरि** भी कहते हैं।

पार्श्वनाथ तीर्थङ्कर के नामवाली मुख्य सड़क के बीच में पुरानी **जैन बसदी** है, जहाँ ११५० और ११६०/११६१ ई० के दो शिला-लेख पाए गए हैं। पहला टूटा हुआ और अस्पष्ट है। दूसरे से यह व्यक्त होता है कि बसदी को कुछ करों की आय दी जाती थी और उसे कुछ भूमि भी दान में मिली थी। इससे प्रतीत होता है कि ११६१ में यहाँ जैन मन्दिर था। **बसदी** के गर्भ-गृह में ३०५ मीटर ऊँचे काले पत्थर में पार्श्वनाथ की आकृति अङ्कित है। मन्दिर की सुखनसी में पद्मावती की आकृति है।

मठ : शिला-लेख से यह भी ज्ञात होता है कि राजा हरिहर ने भारती तीर्थ श्रीपाद को **नौ** गाँव भेंट में दिए थे, जिससे शृङ्गेरी में रहनेवाले ४० ब्राह्मणों द्वारा पूजा-पाठ करवा सकें। एक अन्य शिला-लेख से, जो १३५६ ई० का है, यह ज्ञात होता है कि विजयनगर के शासक बुक्का प्रथम ने भी विद्यातीर्थ के दर्शन किए थे, जिनका सम्मान पूज्य भाव से पूर्व-वर्ती शासक भी करते थे। मठ और उसके गुरुओं की प्रशंसा में बहुत से प्रमाण उपलब्ध हैं। यहाँ मल्लिकार्जुन को समर्पित **मालाहनिकारेश्वर** नामक एक मन्दिर है। इस मन्दिर के गर्भ-गृह में स्थित शिव-लिङ्ग की ऊँचाई लगभग २ मीटर है। इसकी पूजा ऋषि ऋष्यशृङ्ग किया करते थे। कहा जाता है कि उनके पिता विभाण्डक ऋषि इसी लिङ्ग में लीन हुए थे। इस मन्दिर के पूर्व में **विश्वेश्वर** नामक शिव-लिङ्ग की प्रतिष्ठा है, जिसका सुन्दर मन्दिर १६ वीं शती का बना है। इसी के निकट १६६५ ई० में राजगोपाल भट्ट द्वारा निर्मित **नीलकण्ठेश्वर** मन्दिर है।

विद्याशङ्कर मन्दिर : पुरातत्त्व - सर्वेक्षण द्वारा सुरक्षित यह अति सुन्दर स्मारक है। इसका निर्माण १३५७ या १३५८ में विद्यातीर्थ की स्मृति में तुङ्गा नदी के समानान्तर पूर्वाभिमुख-रूप में किया गया। इस मन्दिर को देखने से ऐसा लगता है कि यह होयसला का स्मारक है, किन्तु इसमें चालुक्य, होयसला, द्राविड एवं भारतीय आर्यों की अनूठी मिश्रित शैली दिखाई देती है। इस मन्दिर में एक गर्भ-गृह है, एक विशाल सुखनसी है, जो एक अर्ध-वृत्ताकार प्रदक्षिणा-मार्ग एवं नवरङ्ग से मिलती है। नव-रङ्ग के तीन प्रवेश - द्वार हैं—पूर्व, उत्तर और दक्षिण। गर्भ-गृह की बाहरी दीवार पर **दक्षिण में लगभग** ०·६१८ मीटर ऊँची मूर्ति में सरस्वती के साथ चतुर्मुख ब्रह्मा, पश्चिम में लक्ष्मी - नारायण और उत्तर में उमा-महेश्वर नन्दी के साथ तथा महिषासुर-मर्दिनी काल-भैरव के साथ विराजमान हैं। गर्भ-गृह में ०·४६ मीटर ऊँचा शिव-लिङ्ग है, जो **विद्या - शङ्कर** नाम से प्रसिद्ध है। गर्भ-गृह के पाँच कक्ष विद्या-गणपति, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर एवं दुर्गा को समर्पित हैं।

शारदाम्बा मन्दिर : पूर्व - काल में **विद्या-शङ्कर** मन्दिर के दक्षिण की ओर एक छोटा-सा **'शारदा-मन्दिर'** था, लेकिन बाद में यहाँ एक बड़ी-सी पत्थर की मूर्ति का निर्माण १६०६ में प्रारम्भ हुआ, जो १६१५ में पूरा हुआ। इस मन्दिर का निर्माण उन्हीं कारीगरों ने किया, जिन्होंने मैसूर-भवन का निर्माण किया। मन्दिर का निर्माण द्राविड शैली में हुआ है—एक गर्भ - गृह, एक सुखनसी, एक नवरङ्ग और एक प्राकार। यह मन्दिर पूर्वाभिमुख है और अन्य दिशाओं में इसके तीन द्वार हैं। नव-रङ्ग एक खुला हुआ आगार है, जिसके पार्श्वों में चार - चार स्तम्भों की दो श्रेणियाँ हैं। स्तम्भों पर स्त्री-मूर्तियाँ हैं। दो द्वार-पालकों और महिषासुर - मर्दिनी एवं राज - राजेश्वरी की भी मूर्तियाँ हैं। १० स्तम्भों में से आठ स्तम्भों पर ८ मीटर ऊँची पार्वती एवं अन्य देवियों को उत्कीर्ण किया गया है।

शारदा की मूर्ति में बहुत कम आभूषण दिखाई देते हैं। शारदा के दो लोहे के प्रतिरूप भी हैं, जिनमें एक बड़ा है और दूसरा छोटा। ये प्रतिरूप सरस्वती के प्रतिरूपों से अलग हैं। बड़े प्रतिरूप की स्थापना जिस स्थान पर विद्यातीर्थ स्वामी ने की थी, वहीं पर आदि शङ्कराचार्य ने **'श्रीचक्र'** (**श्रीयन्त्र**) को प्रतिष्ठित किया था। प्रतिमाएँ चतुर्भुजी हैं। चार भुजाओं में क्रमशः अक्ष-माला, अमृत-कलश, पुस्तक और अभय-मुद्रा धारण किए हैं। ये सब सरस्वती की प्रतिमा में होना विस्मय-जनक है। यहाँ लगभग १०·७ मीटर ऊँचा एक दीप - स्तम्भ भी है, जिसमें एक दक्षिणाभिमुखी स्त्री हाथ जोड़े उत्कीर्ण है। सितम्बर/अक्टूबर में दस-दिवसीय **'शारदाम्बा-यात्रा'** का महोत्सव यहाँ मनाया जाता है।

२ तङ्गली—कडूर नगर से १० कि० मी० पर होयसला-युग का एक पुराना अग्रहार-नगर है। यहाँ यात्रियों के प्रायः रुकने से इसका नाम **तङ्गली** पड़ा है। यहाँ एक **ईश्वर - योग - नरसिंह मन्दिर है**, जिसमें नन्दी एवं सरस्वती के दर्शन होते हैं। मन्दिर लगभग १५-१६ वीं शती का है।

३ अडगूर के लक्ष्मी-नारायण मन्दिर में सरस्वती—**'हलेबीड'** से ४ मील पर **'अडगूर'** गाँव है, जिसका मूल नाम **वदुगुरु** था, जो किसी समय बड़ी उन्नत दशा में था। इस गाँव में **लक्ष्मी - नारायण मन्दिर है**, जिसमें तीन गर्भ-गृह, एक नवरङ्ग और एक **सुखनसी** है। इस मन्दिर का निर्माण ११ वीं शती में हुआ था। इसके दक्षिणी प्रकोष्ठ में **'वेणुगोपाल'** के और उत्तरी प्रकोष्ठ में **'सरस्वती'** के दर्शन होते हैं। मन्दिर ४ फीट ऊँची कुर्सी पर स्थित है। सरस्वती भी ४ फीट ऊँचे हंसासन पर बैठी हैं और अपने कर-कमलों में माला, अंकुश, पाश एवं पुस्तक लिए हैं।

४ 'अरसीकेरे' के 'ईश्वर-मन्दिर' में सरस्वती—यह मन्दिर बहुत सुन्दर है और इसमें 'होयसला वास्तु-कला' की झलक दिखाई देती है। यह मन्दिर १२२० से भी पहले का है। इस मन्दिर का निर्माण बल्लाल द्वितीय ने किया। मन्दिर के स्तम्भों पर लक्ष्मी, विष्णु और सरस्वती के मनोरम दर्शन होते हैं।

५. तलकाड के 'वैद्येश्वर मन्दिर' में सरस्वती—१००० साल पूर्व का यह एक प्राचीन स्थान है, जो कावेरी नदी के बाँएँ तट पर स्थित है। यह पश्चिम गङ्गा-राज्य की राजधानी था। ११वीं शताब्दी में चोल-वंश का इस पर अधिकार हुआ और इसे राजधानी के रूप में ही मान्यता दी गई। १११६ में तलकाड के चोल शासक अडियामा को विष्णुवर्धन होयसला ने हराया और इस पर अपना अधिकार कर लिया। **'वैद्येश्वर मन्दिर'** कीर्तिनारायण मन्दिर से १५० गज पर स्थित है। इस मन्दिर के बाहरी द्वार पर **सरस्वती** के दर्शन होते हैं। **सरस्वती** के हाथ में जो पुस्तक है, उस पर कन्नड में चार अक्षर लिखे हैं और वे हैं—**स, र, स्व, ती।**

नवरङ्ग में सरस्वती : उक्त मन्दिर के **नवरङ्ग** की पश्चिमी दीवार पर गणेश के दशन होते हैं। साथ ही पक्के श्वेत पत्थर की **सरस्वती-मूर्ति** है, जो अभय, पाश, कलश एवं पुस्तक लिए है। सरस्वती की यह मूर्ति १३वीं या १४वीं शताब्दी की होगी। यहाँ छः फुट ऊँची **वेङ्कटेश** की भी मूर्ति है।

६. हरनहल्ली के नरसिंह मन्दिर में सरस्वती : अरसिकेरे से ५ मील दक्षिण हरनहल्ली गाँव **में लक्ष्मी-नरसिंह मन्दिर** है। मन्दिर के पूर्व-भाग में सरस्वती के दर्शन होते हैं। यहाँ **सरस्वती** बैठी हुई हैं और हाथों में माला, अंकुश, पाश और ८ पुस्तक लिए हैं।

७. सोमनाथपुर में सरस्वती : कावेरी नदी के बाँएँ मैसूर नगर के पूर्व एक छोटा-सा गाँव है—**सोमनाथपुर। सोलाले** से तीन मील और मैसूर से यह २४ मील पर है। १२५८ या **१२६८** में होयसला के शासक सोमनाथदान-याका ने इस अग्रहार (गाँव) की स्थापना की हैं। गाँव के मध्य में **केशव-मन्दिर** का निर्माण हुआ। इस मन्दिर में **शारदा** के दर्शन होते हैं, जो हाथों में अंकुश और पुस्तक लिए बैठी हैं। दीवार पर नृत्य करती हुई **सरस्वती** की झलक दिखाई देती है, जो अपने आठ हाथों में—१ वीणा, २ लम्ब-हस्त, ३ अंकुश, ४ अक्ष-माला, ५ स्वर्ग-हस्त, ६ वीणा, ७ पाश और ८ पुस्तक लिए हैं।

८. सोमेश्वर मन्दिर में सरस्वती : बहु-चर्चित केशव-मन्दिर से २०० गज पर **सोमेश्वर मन्दिर** है। इसका निर्माण १२३४ में हुआ। इसके नवरङ्ग के दक्षिण-पश्चिम कोने में ढोल-वादक के साथ नृत्य-मुद्रा में **सरस्वती** दिखाई देती हैं। दक्षिणी सुखनसी में भी नृत्य करती हुई छः-भुजी **सरस्वती** के दर्शन होते हैं।

९. नन्दी में सरस्वती : यह एक पहाड़ी दुर्ग है। इसमें नन्दीश्वर का सुन्दर मन्दिर है। अरुणाचलेश्वर मन्दिर के ऊपरी भाग में सरस्वती, नरसिंह, विष्णु एवं सूर्य के दर्शन होते हैं। उमा-महेश्वर-मन्दिर में भी सरस्वती की खड़ी हुई छोटी-सी प्रतिमा है।

हरिहर द्वितीय के सिक्कों पर **सरस्वती** ब्रह्मा के साथ उत्कीर्ण दिखाई देती हैं। अभय, अंकुश, कलश या पाश और पुस्तक भी द्रष्टव्य है। एक मूर्ति में **देवी सरस्वती** रुद्र-वीणा लिए हैं।

१०. बुच्चेश्वर मन्दिर में सरस्वती : हासन से छः मील पर कोरमङ्गला गाँव में बुच्चेश्वर मन्दिर है। होयसला युग के तीन मन्दिर यहाँ हैं। सबसे बड़ा बुच्चेश्वर मन्दिर है। इसका निर्माण एक ब्राह्मण अधिकारी बुच्ची राजा द्वारा ११७३ में किया गया।

इस मन्दिर में सप्त मातृकाओं के साथ माला - अंकुश - पाश-धारिणी सरस्वती एवं गणेश के दर्शन होते हैं।

११. अमृतपुर के अमृतेश्वर मन्दिर में सरस्वती : तरिकेरे नगर से ११ कि० मी० पर 'अमृत-पुर' है। इस गाँव में होयसला - काल का बहुत ही सुन्दर एक मन्दिर है, जिसका निर्माण ११९६ में अमृतेश्वर दण्ड-नायक द्वारा किया गया। इस मन्दिर में रति - मन्मथ, ब्रह्मा, विष्णु और मकर के साथ ताण्डवेश्वर के दर्शन होते हैं। नवरङ्ग की दाईं ओर गणपति, सप्त-मातृका, सरस्वती और नाग की तथा बाँईं ओर वीरभद्र और सुब्रह्मण्य की मूर्तियाँ हैं। प्रमुख आगार के बाहर रामायण, भागवत और महा-भारत की कहानियाँ सुन्दरता-पूर्वक चित्रित हैं।

१२. नागलापुर के चन्नकेश्वर मन्दिर में सरस्वती : नागलापुर में चन्नकेश्वर नामक दो मन्दिर हैं। दोनों होयसला-युग के हैं। चेन्नकेश्वर मन्दिर पुराने नगर के मध्य में उच्च स्थल पर स्थित है। इसमें विमान-रहित गर्भ-गृह है। नवरङ्ग की बाहरी दीवारों पर हाथी, घोड़े, वानर, हंस आदि उत्कीर्ण हैं। गर्भ - गृह में ५ फुट ऊँची केशव - वेङ्कटेश की मूर्तियों के साथ सरस्वती के भी दर्शन होते हैं।

१३. अरलगुप्पा के चेन्निङ्गराय मन्दिर में सरस्वती : इस मन्दिर का निर्माण श्वेत पत्थर से हुआ है। इसमें गर्भ-गृह, बन्द सुखनसी और नवरङ्ग है। ५ फीट ६ इंच ऊँचाईवाले चेन्नकेशव के दर्शन दशावतार के साथ होते हैं। सरस्वती देवी की आकृति यहाँ दर्शनीय है।

१४. होसहोललु के लक्ष्मी - नारायण मन्दिर में सरस्वती : इस मन्दिर का निर्माण लगभग १२५० में हुआ। आजकल इस गाँव में जुलाहे बसे हुए हैं और कोई अग्रहार दिखाई नहीं देता। यहाँ डमरु के साथ नृत्य करती हुई सरस्वती के दर्शन होते हैं।

१५. गोविन्दन - हल्ली के पञ्च लिङ्गेश्वर मन्दिर में सरस्वती : मैसूर जनपद के कृष्णराजपेट तालुक के किक्केरी से ४ मील उत्तर-पश्चिम पर गोविन्दन-हल्ली नामक एक छोटा-सा गाँव है। इस गाँव से निकटतम रेलवे स्टेशन मैसूर-असिकेरे लाइन पर मन्दगेरी है, जो हेमावती नदी के तट पर है। यह गाँव कभी दुधारू गायों के लिए प्रसिद्ध था। यहाँ होयसल-युग का एक मन्दिर है, जिसमें अनेक सुन्दर गर्भ-गृह हैं। दीवारों पर पार्वती, इन्द्र-शची, गणपति और ब्रह्मा के साथ ताण्डवेश्वर तथा महिष-मर्दिनी के साथ शारदा के दर्शन होते हैं। दक्षिणी दीवार पर नृत्य-मुद्रा में सरस्वती की प्रतिमा है।

१६. नुग्गीहल्ली के सदा-शिव-मन्दिर में सरस्वती : केशव-मन्दिर से १०० गज पर सदा-शिव मन्दिर है। इसका निर्माण १२४९ में हुआ। इस मन्दिर के द्वार पर ताण्डव-गणपति और शारदा के दर्शन होते हैं। नवरङ्ग के द्वार पर गज - लक्ष्मी के स्थान पर वीणा - वादिनी सरस्वती की प्रतिमा दर्शनीय है।

१७. हासन जनपद में नागेश्वर के होलेनरसीपुर में सरस्वती : मन्दिर के दक्षिण भाग में शारदा के रूप में खड़ी दुर्गा-माता की प्रतिमा दर्शनीय है, जो शैव और शाक्त चित्र-कला की दिग्दर्शक है। नवरङ्ग में निम्नलिखित प्रतिमाएँ दक्षिणावृत्त में दर्शनीय हैं--

१ सप्त-मातृका, २ तेल-लिप्त बैठी हुई शारदा (अक्ष - माला, अंकुश, पाश और पुस्तक), ३ गणेश, ४ महिषासुर-मर्दिनी, ५ शिव-लिङ्ग, ६ खड़ी मुद्रा में केशव और ७ बैठी हुई सुन्दर मुख-वाली सरस्वती।

१८ जावगल के लक्ष्मी-नरसिंह मन्दिर में सरस्वती – हलेबीड मार्ग पर बनवर रेलवे स्टेशन से ९ मील पर अनेक पुराने मन्दिर हैं, जिनमें लक्ष्मी - नरसिंह मन्दिर का निर्माण गोरे - पत्थर से १३ वीं शताब्दी के मध्य में हुआ। मुख्य प्रकोष्ठ के उत्तरी ओर सरस्वती की दो प्रतिमाएँ हैं, जिनमें एक दश-भुजी है, जो नृत्य-शीला है। भुजाओं में—१ लम्ब, २ पद्म, ३ टूटा, ४ अंकुश, ५ चिह्न - मुद्रा, ६ पाश, ७ टूटा, ८ आभरण, ९ टूटा और १० पुस्तक। उत्तर-पूर्व में सरस्वती बैठी हुई मुद्रा में हैं।

१९ अबलूर में सरस्वती--धारवाड जिले के हिरेकिरम तालुक में यह मन्दिर चालुक्य-युग का है। इसमें चतुर्भुजी सरस्वती बैठी हुई मुद्रा में दर्शन देती हैं। पाश, अंकुश, पुस्तक और अक्ष-माला लिए हैं। हंस पर पद्मासन में बैठी सरस्वती की प्रतिमा बड़ी सुन्दर है।

२० हुम्चा के जैन-मन्दिर में सरस्वती—होसनगर तालुक के शिवमोगा नगर से दक्षिण-पश्चिम लगभग ६० कि० मी० दूर 'हुम्चा' स्थान है, जिसके अन्य नाम हैं—हुबूचा, पोम्पूरचा आदि। यह जिनदत्त की राजधानी थी। 'हुम्बूचा' का अर्थ है सोने का टुकड़ा। यहाँ के जैन मठ द्वारा अनेक मन्दिरों की देख-रेख की जाती है। यथा—१ पार्श्वनाथ मन्दिर, २ पद्मावती मन्दिर, ३ मातादा बसदी, ४ बोगरा बसदी और ५ जत्तिङ्गराय बसदी।

पद्मावती मन्दिर में बैठी हुई चतुर्भुजी सरस्वती के दर्शन होते हैं, जो अभय, अंकुश, पाश और पुस्तक-धारिणी हैं। नवरात्र के दिनों में यहाँ मेला लगता है।

२१ गदग में सरस्वती—धारवाड़ जिले के गदग नगर में त्रिकण्टेश्वर मन्दिर के प्राङ्गण में, दक्षिण ओर सरस्वती का उत्तराभिमुख मन्दिर स्थित है। इसमें सरस्वती की बड़ी सुन्दर प्रतिमा विराजमान है। इस मन्दिर के १४ स्तम्भ बहुत ही आकर्षक हैं। मण्डप और सम्पूर्ण मन्दिर चालुक्यों के कला-कौशल का उत्तम उदाहरण है। अनेक प्रतिमाएँ आभरण-सहित हैं। सरस्वती की प्रतिमा भी ऊँचे सिंहासन पर सुसज्जित है, जो पत्थर की बनी है। सरस्वती साड़ी पहने हैं और किरीट-धारिणी हैं। कटि अलंकृत है और मयूरासन पर कमल के गद्दे पर विराजमान हैं। अन्य मन्दिर हैं: १ त्रिकूटेश्वर मन्दिर, २ वीर-नारायण मन्दिर, ३ सोमेश्वर मन्दिर। ये सभी १२ वीं शताब्दी के हैं और यहाँ पूजा होती है।

२२ हलेबीड के होयसलेश्वर मन्दिर में सरस्वती—बेलूर से ९ मील और बनावर रेलवे स्टेशन से १८ मील पर एक छोटा सा गाँव हलेबीड है। यहाँ होयसला की राजधानी दोरसमुद्र नगर के खण्डहर हैं। इसी प्राचीन नगर में होयसलेश्वर मन्दिर है, जिसमें होयसला-शासकों की सहस्रों प्रतिमाएँ या उत्कीर्ण चित्र दर्शनीय हैं।

उक्त मन्दिर का निर्माण श्वेत-पत्थर से ऊँचे सम-तल पर हुआ है। इसके दो बड़े प्रकोष्ठ हैं, जिनमें होयसलेश्वर और शान्तलेश्वर शिव-लिङ्ग हैं। मन्दिर के बाहर पत्थर से बने नन्दी हैं। एक सूर्य-मन्दिर भी है। सभी दीवारों पर देवी-देवता, मानव, पशु और विविध अलङ्कारों के प्रारूप चित्रित हैं। इसका निर्माण ११२१ में हुआ। यहाँ सरस्वती के भी दर्शन होते हैं।

२३ बेलगावी के त्रिपुर-टङ्केश्वर मन्दिर में सरस्वती--बेलगावी को बेलगामी या बल्लीगामी भी कहते हैं। यह शिमोगा जिले के शिकारीपुर नगर से २१ कि० मी० पर है। कन्नड़ में 'बल्ली' का अर्थ है—पेड़ से लिपटनेवाली लता। यह बनवासे-नाड या बनवासी की राजधानी थी। तीर्थ-स्थान होने से

इसे दक्षिण-केदार भी कहते हैं । यहाँ शिव, विष्णु, ब्रह्मा, जैन एवं बुद्ध के पाँच मठ हैं । इनके अतिरिक्त यहाँ अनेक मन्दिर, ३ 'पुरियाँ', ७ ब्रह्म-पुरियाँ और ५ विद्या-पीठ भी हैं । प्रमुख मन्दिर हैं—**१ केदारेश्वर मन्दिर :** इसके पश्चिम में शिव-लिङ्ग और उत्तर में विष्णु-मूर्ति है । मन्दिर चालुक्य-शैली में सफेद पत्थर से त्रिकूटाचल-शैली में पूर्वाभिमुख बना है । पश्चिम और दक्षिण कूटों में शिव - लिङ्ग तथा उत्तर-कूट में विष्णु - प्रतिमा है । मण्डप के मध्य में ताण्डवेश्वर हैं और सुखनसी में भगवान् शङ्कर खड़े हैं । ब्रह्मा, विष्णु, गणेश आदि की भी प्रतिमाएँ उनके साथ हैं । **२ प्रभुदेव मन्दिर :** १३ वीं शताब्दी में त्रिकूटाचल-संरचना के आधार पर निर्मित । इसे नागेश्वर मन्दिर भी कहते हैं । **३ तारा भगवती मन्दिर :** इस मन्दिर में ६८६ ई० की बुद्ध - कालीन दुर्लभ भगवती तारा - मूर्ति के दर्शन होते हैं । **४ त्रिपुरान्तकेश्वर मन्दिर :** यहाँ दो मन्दिर हैं । द्वारों और स्तम्भों पर उत्कीर्ण प्रतिमाएँ दर्शनीय हैं । यहाँ ११ वीं शताब्दी के भेरुण्डेश्वर और सोमेश्वर मन्दिर के भी अवशेष द्रष्टव्य हैं ।

२४ उदिरी के जैन-मन्दिर में सरस्वती—उदिरी के अन्य नाम हैं—उद्धुर, उद्धारपुर । यहाँ होयलास-युग के बनवासी राज्य के कम्पनाओं का कोषागार था । शिमोगा जिले के सोरब नगर से १५ कि० मी० पर स्थित उदिरी में ११९७ ई० का प्राचीन ईश्वर-मन्दिर है, जिसके साथ ही एक जैन बसदी भी है । यहाँ सरस्वती के दर्शन होते हैं । लक्ष्मीनारायण, वीरभद्र और आञ्जनेय मन्दिर भी यहाँ हैं ।

२५ बरसल के मल्लिकार्जुन मन्दिर में सरस्वती—मण्डया तालुक के मण्डया नगर से १५ मील पर बसरल नामक गाँव है । १३ वीं शताब्दी के राजा नरसिंह-द्वितीय के शासन - काल का निर्मित मल्लिकार्जुन मन्दिर होयसला-कला-कौशल का अनूठा उदाहरण है । बाहरी द्वार पर दो हाथियों की सुन्दर प्रतिमाएँ हैं । अन्धकासुर के सिर पर नृत्य करते हुए षोडश-भुजी शिव की प्रतिमा दर्शनीय है । इसके अतिरिक्त द्वा-विंशति-भुजी दुर्गा, नृत्य-भङ्गिमा में सरस्वती, कैलाश को उठाते हुए रावण, गजासुर-मर्दन, आदि आकर्षक प्रतिमाएँ द्रष्टव्य हैं ।

२६ कुक्कानूर के नव-लिङ्ग मन्दिर में सरस्वती—गदग के निकट और इट्टागी से ४ मील पर कुक्कानूर गाँव है । यहाँ महा-माया और नव-लिङ्ग नामक दो मन्दिर हैं । नव - लिङ्ग मन्दिर के स्तम्भों पर बैठी हुई जो देवी की प्रतिमा है, वह लक्ष्मी की नहीं, अपितु सरस्वती की है और यह प्रतिमा बहुत ही सुन्दर है ।

२७ बागली में सरस्वती—बागली के मन्दिर में वीरासना सरस्वती के दुर्लभ दर्शन मिलते हैं । आगे के दाएँ हाथ की व्याख्यान-मुद्रा में अक्ष-माला है और आगेवाले हाथ में पुस्तक, लेकिन पीछे के दाएँ हाथ में कमल के स्थान पर अंकुश और पीछे के बाँएँ हाथ में वीणा के स्थान पर पाश ।

२८ महा-कूट (बीजापुर) के महा-कोटेश्वर मन्दिर में सरस्वती—बीजापुर जिले के बादामी स्थान से ३ मील पर महा-कूट (नन्दिकेश्वर) है । यहाँ अनेक मन्दिर और शिव-लिङ्ग हैं । द्वार-पाल के रूप में यहाँ वातापी और इल्वाल नामक राक्षसों की आकृतियाँ हैं । सभी मन्दिर द्राविड़/चालुक्य शैली में हैं । महा-कूट के महा-कूटेश्वर मन्दिर में उच्च कोटि के प्रस्तर से निर्मित सरस्वती की मूर्ति है । यहाँ अगस्त्य मुनि द्वारा निर्मित एक सरोवर भी है, जिसे 'विष्णु-पुष्करणी तीर्थ' कहते हैं । सरोवर में चतुर्मुख ब्रह्मा से युक्त एक मण्डप है ।

२९ कण्व-पुरी के कन्नम-बाड़ी मन्दिरों में सरस्वती--'स्थल-पुराण' के अनुसार कण्व मुनि का आश्रम यहाँ था। कण्वेश्वर, गोपाल-कृष्ण और लक्ष्मी-देवी के तीन मन्दिर यहाँ हैं। पहला कावेरी नदी के तट पर था, जो अब जल-मग्न हो चुका है। गोपाल-कृष्ण मन्दिर १००×६० गज के बड़े वास्तु पर द्राविड़ और चालुक्य-शैली में बना है। यहाँ दक्षिण दिशा में १७, पश्चिम में १२ और उत्तर में १७ तीर्थ-मन्दिर हैं। सुखनसी पश्चिम ओर खुली है। २४ मूर्तियाँ हैं और विष्णु के दशावतारों के अतिरिक्त ब्रह्मा, सरस्वती, हरि-हर और हय-ग्रीव के भी दर्शन होते हैं। देवताओं के नाम द्वार की सोहावटी पर उत्कीर्ण हैं। इसे राजा वडियार के पुत्र नरसिंह राजा ने बनवाया था। लक्ष्मी-देवी के मन्दिर को १८१८ में बनवाया था, जिसकी तीन कोठरियाँ एक ही पंक्ति में हैं। बीच में महा-लक्ष्मी, दाईं ओर सरस्वती और बाईं कोठरी में महा-काली हैं। सभी साढ़े चार फीट लम्बी, चतुर्भुजी और आसीना हैं। सरस्वती दोनों हाथों से वीणा बजा रही हैं और अन्य दो हाथों में पुस्तक तथा कमल लिए हैं।

३० मागुर के दशेश्वर-मन्दिर में सरस्वती--यहाँ उत्तम गोपुर के साथ एक विशाल मन्दिर है, जिसके द्वार और सोहावटियों पर उत्तम सज्जा है। मन्दिर के गोल शिखर-मण्डप पर पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती आदि की प्रतिमाएँ हैं।

३१ नदीतावरे (जिला चित्रदुर्ग) के ईश्वर-मन्दिर में सरस्वती--यह मन्दिर हरि-हर से ८ मील पर चालुक्य (होयसला) शैली में १२२० का बना है 'अमृतलिङ्ग-माणकेश्वर' के नाम से भी प्रसिद्ध है। सरस्वती की प्रतिमा नव-रङ्ग में सप्त-मातृकाओं के साथ सुब्रह्मण्य और उमा-महेश्वर के दाईं ओर दिखाई देती है।

३२ दावनगोरे के पास अनेकण्ड मन्दिर में सरस्वती--चित्रदुर्ग जिले में दावनगोरे से दो मील पर चालुक्य-शैली का ईश्वर-मन्दिर है। मूलतः यह तीन कोठरियों में था। अब केवल दो कोठरियाँ हैं। द्वार के दक्षिण ओर सरस्वती की और बाईं ओर महिषासुर-मर्दिनी की आकृतियाँ दर्शनीय हैं।

३३ हरदन-हल्ली मन्दिर में सरस्वती--चामराजनगर से तीन मील दूर हरदन-हल्ली गाँव में क्षति-ग्रस्त दिव्य-लिङ्गेश्वर मन्दिर है, जो पुरानी शैली के बड़े गोपुर और दीप-स्तम्भ से युक्त है। इसके प्राकार में सरस्वती-मन्दिर है।

३४ मूड-बिद्री की सेतुरा-बस्तियों में सरस्वती--यहाँ १२ वीं-१३ वीं शती की सम-कोण-आकार की जैन बस्तियाँ हैं। २४ तीर्थङ्कर एक ही पंक्ति में स्थापित हैं। दोनों ओर आमने-सामने पद्मावती और सरस्वती हैं। तीर्थङ्कर शान्तिनाथ की अम्मानवरा बस्ती में सरस्वती की मूर्तियाँ दर्शनीय हैं।

३५ बाईन्दूर के सेनेश्वर मन्दिर में सरस्वती--कुण्डापुर (जिला दक्षिण कनारा) के उत्तर में ३० कि. मी. पर अलूप राजाओं का महत्त्व-पूर्ण नगर बाईदूर है। १४ वीं शताब्दी में यह हाडुवल्ली की जैन राजकुमारी बेना देवी के नियन्त्रण में था। चालुक्य-शैली का सेनेश्वर मन्दिर ११ वीं शताब्दी का है। इसके गर्भ-गृह में भैरव और महा-देव, चामुण्डा और उग्र नृसिंह की मूर्तियाँ हैं। आदित्य, शङ्कर-नारायण, गणपति, सप्त-मातृकाओं आदि के लिए छोटी कोठरियाँ बनी हैं। मुख्य द्वार पर शिव-पार्वती, ब्रह्मा-सरस्वती, विष्णु-लक्ष्मी की प्रतिमाएँ हैं। सुखनसी में सरस्वती की चार फीट लम्बी प्रतिमा है। गर्भ-गृह में पञ्च-धातु के सेनेश्वर लिङ्ग और ईडा-शिव की प्रतिमाएँ हैं। यह नगर तट-वर्ती व्यापार का बन्दरगाह है।

आईहोल, लक्कुण्डी, वन-वासी की दीर्घाओं में सरस्वती की कुछ मूर्तियों को प्रकृतिस्थ करके रखा गया है। होरेहडागल्ली के कल्लीश्वर-मन्दिर में सरस्वती की मूर्ति है। शारदा की २ फीट लम्बी प्रतिमा मुदुकेरी के सोमनाथ मन्दिर में है, जो १०-११ वीं शताब्दी की है। उडुपी तालुक के बालकुदूर मठ में शारदा की तीन फीट लम्बी काष्ठ-मूर्ति (१३ वीं शताब्दी) दर्शनीय है, जो कल्याण - चालुक्य की अनूठी शैली में बनी है। मङ्गलूर तालुक के गुन्नूर में नृसिंह मन्दिर में सरस्वती की जो प्रतिमा है, वह १५ वीं शताब्दी की है और रजत-मण्डित है। वहीं सरस्वती की एक कांस्य प्रतिमा भी है। सरस्वती की एक अन्य कांस्य प्रतिमा उडुपी तालुक के कोटा में लक्ष्मी-नारायण मन्दिर में दर्शनीय है, जो १३ वीं शती की है। इसी तालुक के अलिवेरू में मध्य-कालीन दुर्गा देवी का मन्दिर है, जिसमें काली, लक्ष्मी और सरस्वती की प्रतिमाएँ दर्शन करने योग्य हैं।

उक्त विवरण के अतिरिक्त भगवती सरस्वती के दर्शन नञ्जनगुड, चिक्कमङ्गलूर, धर्म - स्थल (हलियान) के मन्दिरों में तथा अन्य स्थानों में भी सम्भव हैं। इस सम्बन्ध में गहन शोध की आवश्यकता है।

मैसूर की देवी निमिषाम्बा

मैसूर जिले के श्रीरङ्गपट्टनम् में रङ्गनाथ स्वामी का मन्दिर प्रख्यात है। उससे लगभग दो कि० मी० पर गञ्जम् - गाँव में 'लोक - पावनी' नाम से प्रसिद्ध कावेरी नदी के किनारे **'देवी निमिषाम्बा'** का सुन्दर मन्दिर है। कावेरी नदी के कारण श्रीरङ्गपट्टनम् 'पश्चिम रङ्ग' के नाम से प्रसिद्ध है।

कावेरी नदी को **'दक्षिण गङ्गा'** कहते हैं। देवी निमिषाम्बा का मन्दिर १,००० वर्ष से भी अधिक प्राचीन है। कुछ प्रलेखों के अनुसार यह केवल २१५ वर्ष ही पुराना है। जो भी हो, इस मन्दिर में निमिषाम्बा के विग्रह के साथ ही मौक्तिकेश्वर और लक्ष्मी-नारायण के भी दर्शन होते हैं। मन्दिर के सन्निकट ही महा-गणपति का भी मन्दिर है।

श्रीनिमिषाम्बा का सुन्दर विग्रह कृष्ण-शिला द्वारा निर्मित है। देवी माँ के श्रीचरणों के समक्ष कृष्ण-शिला पर बीजाक्षरों से अङ्कित सुन्दर 'श्रीचक्र' दर्शनीय है। किम्वदन्ती है कि देवी माँ से बहुत पहले आदि-शङ्कराचार्य द्वारा इस 'श्रीचक्र' को उत्कीर्ण किया गया।

माँ निमिषाम्बा के दर्शन के लिए मैसूर, बेङ्गलूर और अन्य नगरों के लोग उमड़ते रहते हैं। अन्य यात्रियों के लिए भी श्रीरङ्गपट्टनम् एक आकर्षक केन्द्र है और जो लोग मैसूर आते हैं, उन्हें श्री रङ्गनाथ स्वामी के दर्शन करने की सुविधा तो उपलब्ध ही है और वे देवी माँ के भी दर्शन कर सकते हैं।

यह मन्दिर बहुत समय तक तो उपेक्षित रहा, किन्तु अब इसकी देख - रेख बेङ्गलूर के श्री गोविन्द राजु द्वारा हो रही है। उनका कथन है कि उन्हें दस-बारह बार अन्तरिक्ष में पार्वती और परमेश्वर के दर्शन हुए, जिनसे इस पुराने मन्दिर का जीर्णोद्धार करने का निर्देश मिला। यही नहीं, १९६९ में दो बूढ़ी महिलाएँ उनके पास आईं और उन्होंने भी सुझाव दिया कि देवी माँ के मन्दिर का जीर्णोद्धार शीघ्रातिशीघ्र करें। फलतः श्री गोविन्द राजु ने एक 'न्यास' का गठन किया और १९६९ में ही जीर्णोद्धार का कार्य प्रारम्भ हो गया।

१९७० में पहली 'शिव-रात्रि' यहाँ मनाई गई। उस समय रात्रि के तीसरे प्रहर के अन्त और चौथे प्रहर के प्रारम्भ में श्री राजु को देवी माँ के दर्शन हुए।

१९७२ में सम्प्रोक्षण' एवं 'अष्ट-बन्ध' के साथ पञ्च-लौह मूर्ति एवं उत्सव-मूर्तियों का उत्थापन हुआ। देवी निमिषाम्बा का 'रथ-त्यौहार' भी होने लगा। शृङ्गेरी एवं द्वारका के जगद्गुरु श्रीशङ्कराचार्य जैसे अनेक धर्माचार्यों द्वारा 'श्रीचक्र' एवं 'देवो माँ' के प्रति विशेष पूजानुष्ठानों का आयोजन किया गया। मैसूर के महाराज श्री जयचामराजेन्द्र ओडयार ने भी आकर इस मन्दिर के दर्शन किए। मैसूर के प्रख्यात श्री गणपति सच्चिदानन्द स्वामी जी महाराज ने इस मन्दिर के दर्शन के साथ ही विशेष पूजोत्सव का भी आयोजन किया।

यहाँ यह उल्लेखनोय है कि इस बदरीनाथ के एक महर्षि जब श्रीनिमिषाम्बा-मन्दिर के दर्शनार्थ आए, तो उन्होंने यह रहस्योद्घाटन किया कि वीज-मन्त्रों से उत्कीर्ण यहाँ का **'श्री - चक्र'** (श्री - यन्त्र) अपने आपमें अनूठा है और यह आसाम की एक गुफा को छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं दिखाई देता।

न्यास के संयोजक श्री गोविन्द राजु सरल स्वामी हैं और आपके पर - दादा मैसूर के राज्य मन्त्रि-मण्डल में मुख्य अभियन्ता (इञ्जीनियर) थे। आपके अभिभावक श्री तिप्पण्ण ओडयार - वंश के मन्त्रियों में एक हैं। पौराणिक प्रमाण के अनुसार रात्रि के तीसरे प्रहर के अन्त में देवी माँ प्रति-दिन मन्दिर में प्रवेश करती हैं। यही कारण है कि उस समय इस मन्दिर के सभी विग्रहों के आगे का पट गिरा दिया जाता है।

रुद्राभिषेक, पञ्चामृताभिषेक, महा-अभिषेक, सहस्र-अर्चन, नक्षत्र-होम आदि सेवाएँ अर्चकों द्वारा प्रति-दिन की जाती हैं। जन-श्रुति है कि देवी माँ के दर्शन-पूजन से कितनी ही निस्सन्तान महिलाएँ माताएँ बन गईं। इसमें सन्देह नहीं कि कर्नाटक का यह एक सिद्ध **'शक्ति-पीठ'** है।

कर्नाटक के अन्य श्रीदेवी-मन्दिर

*** श्री मौनेश्वर स्वामी जी**

१ श्रीकाली माता--सिरसङ्गि ग्राम, बेलगाँव **२ श्री सञ्जीवनी माता**--(श्री शक्ति-पीठ) लिङ्ग-सुगूर, रायचूर। **३ श्री श्यामलाम्बा देवी**--ग्राम बेनकनहल्ली, तालुका कुन्दगोल, धारवाड़। **४ श्री कालिका देवी (अग्नि से आविर्भूत)**--गोल्लरहल्ली, बल्लारि। **५ श्री रेणुका देवी**--सौदत्ती ग्राम, बेलगाँव। **६ श्री दुर्गा देवी**--बल्लारि नगर। **७ श्री बगलामुखी**--श्री सिद्ध पर्वत, सिन्धनूर तालुका, रायचूर। **८ श्री शारदा माता (शङ्कराचार्य द्वारा साक्षात्कार)**--शृङ्गेरी चिक्कमगलूर। **९ श्री अन्नपूर्णेश्वरी**--होरनाडु, कुन्दापुर, उडपि के समीप। **१० श्री मूकाम्बिका देवी**--(भगवान् शिव द्वारा स्थापित स्वर्ण-रेखाङ्कित श्री-चक्र)--कोल्लूर। **११ श्री चामुण्डेश्वरी**--मैसूर। **१२ श्री मारिकाम्बा देवी**--सिरसि ग्राम, कारवार। **१३ श्री वनशङ्करी देवी**--बदामि, बीजापुर। **१४ श्री चन्द्रला परमेश्वरी**--सन्नति ग्राम, गुलबर्गा। **१५ श्री मायाम्बा देवी**--कुक्कनूर ग्राम, रायचूर। **१६ श्री दुर्गा परमेश्वरी**--कटिलु केण्डा, चिक्कमगलूर। **१७ श्री कन्नम्मा देवी**--कनसावि ग्राम, गोकाक तालुका, बेलगाँव। **१८ श्री भुवनेश्वरी (स्वामी श्री विद्यारण्य द्वारा साक्षात्कार)**--हम्पी क्षेत्र, होसपेट तालुका, बल्लारी। **१९ श्री हुलिगेम्मा देवी**--मुनिराबाद, बल्लारी। **२० यल्लम्मा देवी**--नीरमानवि ग्राम, मानवि तालुका, रायचर।--

'शक्ति-पीठ', निकट बस-स्थान, लिङ्गसुगूर छावनी, रायचूर (कर्नाटक)

भौतिक-वाद का मोह

• 'कौल-कल्पतरु' पं० देवीदत्त शुक्ल

[प्रस्तुत निबन्ध आज से लगभग ४५ वर्ष पूर्व 'चण्डी' पत्रिका में प्रकाशित हुआ। इस निबन्ध की सत्यता आज स्वतः स्पष्ट है। 'चण्डी' के प्रवर्त्तक पं० देवीदत्त शुक्ल जी के निम्न-लिखित विचार आज पहले से अधिक विचारणीय एवं मननीय प्रतीत हो रहे हैं।—सं०]

भौतिक-वादी का 'अहं' उसे सत्य के ग्रहण करने से सदैव विरत रखता है। यही कारण है कि वह उसके प्रभाव में आकर यदा-कदा ऊल-जलूल बातें करने लगता है, जो उसे प्रायः उपहासास्पद बना देती हैं। अभी उस दिन एक ऐसे ही भौतिक-वादी ने अपने 'अहं' के दम्भ का उद्घोष करके अपने विचारों की सार-हीनता का दिग्दर्शन कराया है। इन महोदय का कहना है कि 'आज का युग प्रकाश का युग है और इस युग में विचार और कर्म की ही प्रधानता है' अर्थात् बीता हुआ युग उनकी दृष्टि में अन्धकार का युग था, जिसमें केवल विश्वास की ही प्रधानता थी!

आश्चर्य की बात है कि ऐसी आधार-हीन मीमांसा करते समय उन सज्जन ने 'एथेन्स' तथा 'सोक्रेटीज' का उल्लेख तो गर्व के साथ किया और 'कार्ल-मार्क्स' की चर्चा से अपने विचारोत्कर्ष की समाप्ति की, परन्तु पलने के दिनों के समय से अब तक सुनी गई **'जनक-पुर'** तथा **'जनक'** की उपनिषद्-कालीन बातों का उल्लेख करना वे भूल गए! कदाचित् वह उनके विचारानुसार गपोड़ियों के गप से अधिक महत्त्व नहीं रखतीं और **'महात्मा गांधी'** की चर्चा करना अनुपयुक्त समझा होगा। अपना-अपना दृष्टिकोण ही तो! उनके इस 'प्रकाश-युग' में सभी को अपने-अपने विचार प्रगट करने की स्वतन्त्रता प्राप्त है। तब वे सभी कुछ कह सकते हैं। भले ही उनकी कथित बातों की सङ्गति बैठती हो या नहीं।

हमारे ये स्वतन्त्र विचारक बीते हुए काल को अज्ञानियों का युग बताकर, अपने को 'ज्ञान-मार्ग' का पथिक समझकर, अपना सिर ऊँचा तथा अपनी छाती तानने के लिए जिस प्रकार सर्वथा स्वतन्त्र हैं, उसी प्रकार उनके विचारों से न सहमत होनेवाले इतर लोग भी यह कहने को स्वतन्त्र हैं कि भूत-काल को अन्धकार का युग बताकर उन्होंने 'सत्य' का अपलाप किया है और उस काल में एक-मात्र विश्वास की ही प्रधानता होने का निर्देश करके उन्होंने उसकी हत्या भी की है।

वेदों के समय से लेकर महा-भारत के काल तक इस देश में 'विचार' और 'कर्म' की महत्ता अविच्छिन्न रूप से विद्यमान रही है। हाँ, उस महान् युग के इन दोनों सिद्धान्तों का आधार 'सत्य' और 'विश्वास' पर अवश्य रहा है। और यह एक आश्चर्य की बात है कि हम उनकी परम्परा का अस्तित्व, आज के प्रकाश के युग में भी, कम-से-कम पुण्य-भूमि भारत में अद्यावधि विद्यमान पाते हैं। हम अपने इस कथन के प्रमाण में महात्मा गांधी के चरित्र का उल्लेख गौरव के साथ कर सकते हैं। उनका चरित्र 'विचार और कर्म' के सिद्धान्त का जितना अधिक प्रतिपादन करता है, उतना ही 'सत्य' और 'विश्वास' का भी। अब रहा यह कि उस भूत-काल के अन्धकार-काल में इन सिद्धान्तों का कहाँ कैसा महत्त्व स्थापित था, इसके प्रतिपादन के लिए उपनिषद् की कथाओं और 'गीता' का उल्लेख करना अलं होगा, परन्तु भौतिक-वादी इस प्रकार के प्रमाण स्वीकार करने को तैयार नहीं होंगे क्योंकि वे वर्तमान 'प्रकाश-युग' के प्रकाश से अत्यधिक अभि-भूत हैं!

ऐसी दशा में हमें यहाँ उक्त पवित्र-तम ग्रन्थों के प्रमाणों का उल्लेख करने की कोई आवश्यकता नहीं है। हम यहाँ यह अवश्य कहना चाहते हैं कि जिस 'भौतिक-वाद' के आलोक से मुग्ध होकर हमारे

देश के लोग विपथ-गामी हो रहे हैं, उन्हें क्या यह नहीं दिखाई पड़ता कि आज उसके जन्म-स्थान में ही उसके प्रति वहाँ के निवासियों का कैसा भाव है ? 'भौतिक-वाद' का बोल-बाला पाश्चात्य देशों में है और उसने उन देशों को अपनी लपेट में लाकर ऐसी पटकनी दी कि वे सब त्राहि-त्राहि कर रहे हैं।

'विचार-स्वातन्त्र्य' तथा 'कर्म-वाद' के व्यामोह में आकर वहाँ के मनीषी अपनी परम्पराओं का त्याग कर नई खोजों और अन्वेषणों में लग गए। अपने इन प्रयत्नों के द्वारा उन्होंने मानव-जीवन के रहन-सहन का ही काया-पलट नहीं कर दिया, किन्तु संसार का भी नक्शा बदल दिया। इसका एक भीषण परिणाम यह हुआ कि उसमें एक ऐसे 'पूँजी-वाद' का जन्म हो गया, जिसने वहाँ के साधारण समाज का अत्यधिक शोषण किया। फल-स्वरूप इन शोषितों के त्राण-कर्त्ता अस्तित्व में आए और इन्होंने 'साम्य-वाद' को जन्म देकर उन शोषितों को अपने विचार-रूपी महान् यन्त्र के कल-पुर्जों में परिणत कर, उस पर आरोहण कर, ये लोग संसार को एक ऐसे गहरे खड्ड की ओर लिए जा रहे हैं, जिसका परिणाम सोचा भी नहीं जा सकता। वहाँ का 'भौतिक-वाद' आज ऐसी ही विषम परिस्थिति को पहुँचा है, परन्तु दुःख के साथ कहना पड़ता है कि यह सब प्रत्यक्ष घटित होते हुए देखकर भी हमारे देश के पाश्चात्य शिक्षा-प्राप्त बहुतेरे विज्ञ-जन दास्य-भावना से अभिभूत होकर अपनी अनुकरण-प्रियता के कारण 'भौतिक-वाद' के ही गीत गाने में अपना गौरव मानते हैं तथा अपने देश का मङ्गल समझते हैं! ऐसे समझदारों से क्या कहा जाय !!

रायचूर का शक्ति-पीठ

कर्नाटक के रायचूर-जनपद के 'लिङ्गसुर' (छावनी) नामक स्थान में उक्त 'शक्ति-पीठ' की स्थापना पू. श्रीमौनेश्वर स्वामी जी द्वारा की गई है। इस 'पीठ' में शक्ति-उपासक बन्धु एकत्र होकर प्रति मङ्गलवार एवं शुक्रवार को सामूहिक रूप से श्री गुरु-गायत्री का जप कर शक्ति की स्तुति किया करते हैं। यथा—

मौनेश्वर गुरु-गायत्री मन्त्र——ॐ **मौनेश्वर विद्महे श्रीविश्व-कर्म धीमहि तन्नो सद्गुरु प्रचोदयात्।**

॥ श्रीशक्ति नामावली-स्तुति ॥

ॐ शक्ति ॐ शक्ति ॐ शक्ति हे, श्री शक्ति श्री शक्ति श्री शक्ति हे !
श्री शक्ति श्री शक्ति विश्व-शक्ति हे, विश्व-शक्ति विश्व-शक्ति महा-शक्ति हे !
महा-शक्ति महा-शक्ति इच्छा-शक्ति हे, इच्छा-शक्ति इच्छा-शक्ति क्रिया-शक्ति हे !
क्रिया-शक्ति क्रिया-शक्ति प्राण-शक्ति हे, प्राण-शक्ति प्राण-शक्ति त्राण-शक्ति हे !
त्राण-शक्ति त्राण-शक्ति ज्ञान-शक्ति हे, ज्ञान-शक्ति ज्ञान-शक्ति सिद्धि शक्ति हे !
सिद्धि - शक्ति सिद्धि - शक्ति मति-शक्ति हे, मति - शक्ति मति-शक्ति मोद-शक्ति हे !
मोद-शक्ति मोद-शक्ति नाद-शक्ति हे, नाद-शक्ति नाद-शक्ति ब्रह्म-शक्ति हे !
ब्रह्म-शक्ति ब्रह्म-शक्ति आत्म-शक्ति हे, आत्म-शक्ति आत्म-शक्ति सद्गुरु-शक्ति हे !
सद्गुरु-शक्ति सद्गुरु-शक्ति मौन-शक्ति हे, मौन-शक्ति मौन-शक्ति ईश्वर-शक्ति हे !
ईश्वर-शक्ति ईश्वर-शक्ति शान्ति-शक्ति हे, शान्ति-शक्ति शान्ति-शक्ति ह्रीं-शक्ति हे !
ह्रीं-शक्ति ह्रीं-शक्ति हंस-शक्ति हे, हंस-शक्ति हंस-शक्ति सोहम्-शक्ति हे !
सोहम्-शक्ति सोहम्-शक्ति मुक्ति-शक्ति हे !

—'श्री शक्ति-पीठ' रायचूर के संस्थापक **श्री मौनेश्वर स्वामीजी विरचित**

'साधना' के मार्ग में 'स्वार्थ' सबसे बड़ा बाधक है। 'स्वार्थ' का त्याग कर ही, 'साधक' अपने ध्येय की ओर बढ़ सकता है। गुरु-जनों का ऐसा ही उपदेश है। '**साधना**' की जो प्रक्रियाएँ बताई गई हैं, उनमें भी 'स्वार्थ-भावना' को दबाने का उपदेश किया गया है, परन्तु मानव लाचार है क्योंकि वह और चाहे जो कुछ हो, 'स्वार्थी' सबसे पहले होता है। '**अध्यात्म-मार्ग**' ऐसे स्वार्थी मानवों के लिए सदैव बन्द रहा है। ऐसी दशा में '**मन्त्र-साधना**' में आगे बढ़ना तो और भी सङ्कट की बात है।

जो '**मन्त्र-साधना**' आज कामना-परक 'साधना' मान ली गई है और जिसके सम्बन्ध में शास्त्रों में भी बहुत कुछ ऐसा ही महत्त्व प्रगट किया गया है, वह स्वार्थी मानवों को तो और भी उसी रूप में दिखाई देगी, यद्यपि अन्य मार्गों की भाँति उसका वास्तव में वैसा रूप न पहले था और न आज ही है। हम बल-पूर्वक कह सकते हैं कि अन्य मार्गों की अपेक्षा '**मन्त्र - साधना**' कहीं अधिक तत्त्व - ज्ञानात्मक हो रही है और आज भी है। उसका अनुसरण करने में यही कारण है कि 'मन्त्र - साधना' में '**तत्त्व-ज्ञान**' की अनिवार्यता रही है। दूसरे मार्गों की अपेक्षा कहीं अधिक 'तत्त्व-ज्ञान' की आवश्यकता होती है—अध्यात्म-मार्ग के उपयुक्त 'गुरु' और उपयुक्त 'शिष्य' को।

४६ वेद-विद्या का ह्रास

भारत धर्म-प्रधान देश है। संसार में सर्व-प्रथम भारत में ही ईश्वरीय आदेश-रूप '**वेद विद्या**' का प्रचार हुआ था। दुःख के साथ कहना पड़ता है कि उस अति पावन विद्या का इस देश में ऐसा भयावह ह्रास हो गया है कि वह अब कुछ इने-गिने संस्कारों तक सीमित रह गई है। उसके बड़े-बड़े अनुष्ठान पुस्तकों में भले ही लिखे मिलते हों, परन्तु व्यवहार में उनका अब कोई अस्तित्व नहीं है। बड़े-बड़े धर्माचार्यों ने, महात्माओं ने तथा विद्वानों ने उसके उद्धार के लिए समय-समय पर बड़े-बड़ प्रयत्न किए, परन्तु कोई भी सफल-मनोरथ नहीं हो सका। ऐसा क्यों हुआ, यह एक प्रश्न है, जिसका समाधान करना एक टेढ़ी खीर है।

इन पंक्तियों का लेखक तो अपनी साधारण बुद्धि के अनुसार यही कहेगा कि '**वेद-विद्या**' के विरोधियों के प्रचार ने भारत की साधारण जनता को भ्रान्त कर दिया। फलतः साधारण जन-समाज—सबका सब उसका विरोधी हो गया। फलतः उसने उन सरल मार्गों को अपना लिया, जिनका उसके बीच में प्रचार किया गया और जो उसकी समझ में आ भी गए। आज का हिन्दू - समाज ऐसे ही मार्गों का पथिक है और वह अपनी इस स्थिति से सन्तुष्ट भी है।

उपर्युक्त परिस्थिति को देखते हुए यह आशा कैसे की जा सकती है कि भारत के पवित्र भू-खण्ड में '**वेद-विद्या**' का पुनः आविर्भाव किया जा सकता है? पिछले दिनों '**वेद-विद्या**' के अनुसन्धान के प्रयास में कई बड़े-बड़े समारोह हुए। उनमें देश के बड़े-बड़े विद्वानों ने भाग लेकर '**वेद-विद्या**' के सम्बन्ध में विचार-विनिमय किए, अति महत्त्व-पूर्ण निबन्ध लिखकर '**वेद-विद्या**' के मूल स्रोत पर प्रकाश डाला तथा गवेषणा-पूर्ण भाषण भी हुए, परन्तु उस सारे बोझिल प्रयास का क्या परिणाम निकला? भले ही पुष्कल धन-राशि व्यय करके उक्त समारोह किए गए हों और उनको सारी-की-सारी कार्य-वाही लिपि-बद्ध भी कर ली गई हो, परन्तु साधारण जनता ने न तो उसे कर्ण-गोचर ही किया, न नेत्र-गोचर ही! बात क्या है?

'वेद-विद्या' के प्रति हिन्दुओं की इस उपेक्षा और उदासीनता का क्या कारण है ? इसका भी उत्तर देना सरल नहीं है, परन्तु यह प्रत्यक्ष है कि आज का हिन्दू न तो 'वेद' की बात सुनना चाहता है, और न उसकी बातों को व्यवहार में ही लाना चाहता है। भ्रान्त पथिक की भाँति वह उसके क्षेत्र से बहुत दूर निकल गया है ! लाख उसे कोई समझाए, वह उस दिशा की ओर अपना मुँह नहीं करना चाहता !

असल बात यह है कि हिन्दू जब स्वाधीन-चेता था, अपने घर का स्वामी था, अपनी संस्कृति तथा अपने देश का जब उसे गहरा प्रेम था, तब उसके घर के ही बन्धुओं ने उसे उसके गन्तव्य मार्ग से भ्रष्ट कर दिया। वह भटक गया और जब पुनः लौटा और उसने अपनी सीधी राह पर आना चाहा, तब उसे अपनी पुरानी वस्तु नहीं मिली। वह किङ्कर्त्तव्य-विमूढ़ हो गया।

ऐसी परिस्थिति थी, जब उसके दूसरी ओर से अनेक शत्रु नए भेष और नए रूप में आकर उसकी छाती पर चढ़ बैठे। कोई सात-आठ सौ वर्ष तक वह दासता की बेड़ियों से जकड़ा रहा। उसका भविष्य उसके लिए अन्धकार-मय ही रहा। निःसन्देह, उसकी इस दुरवस्था के काल में अनेक तेजस्वी व्यक्तियों ने बड़ी-बड़ी मशालें जलाकर उसके मार्ग-प्रदर्शन का महत्त्व - पूर्ण कार्य किया, परन्तु ये लोग भी उसे असल वस्तु नहीं दे सके। वह अपनी पुरानी **'वेद-विद्या'** नहीं पा सका। पाता कैसे ? ये प्रकाश-पुञ्ज-धारी भी तो दासता के युग की ही विभूति थे !

आज भारत स्वतन्त्र है। उसकी 'दासता की बेड़ियाँ टूट चुकी हैं, परन्तु 'दासता' के 'मल' से वह अभिभूत हो चुका है। उसकी गन्दगी से वह सराबोर है ! उसके आज के अभिभावकों ने, जो स्वयं इस गन्दगी से ओत-प्रोत हैं, उसे एक ऐसी क्रान्ति-रूपी ज्वाला - मुखी के गर्त में ढकेल दिया है, जहाँ से यदि भगवद्-कृपा हुई, तो दमकते हुए सोने की भाँति ही वह निर्मल होकर निकलेगा, या वहीं भस्म होकर राख हो जायगा, उसका नाम-शेष हो जायगा। निःसन्देह, मूल प्राचीन **'वेद-विद्या'** को भुलाकर आज का हिन्दू कुछ-का-कुछ हो गया है, परन्तु वह उसके मूल - मन्त्र को आज भी नहीं भूला है। क्या उसका वह मूल-मन्त्र 'ॐ' उसकी रक्षा नहीं करेगा ? यही एक आशा की किरण है।

४७ वितण्डा-वाद

'धर्म' परम शान्ति का वाहक है, परन्तु देखने में यही आया है कि इस पवित्र वस्तु को भी लेकर संसार में बड़े अनर्थ ढाए गए हैं—इस 'कलि-युग' में ही नहीं, 'सत्य-युग' तक में ! संसार में 'वैदिक धर्म' अति प्राचीन 'धर्म' है। भले ही इस बात को कोई न माने, किन्तु 'वैदिक धर्म' के अनुयायी हिन्दू इस बात को जानते ही नहीं हैं, किन्तु उसके अति विस्तृत जीवन - काल को प्रति-दिन वर्ष-गणना करते रहते हैं। ऐसे ही महान् प्राचीन 'धर्म' के प्रारम्भिक काल में 'धर्म' की बात को लेकर रावी नदी के तट पर एक बार भयङ्कर कलह उपस्थित हुआ था। और यह कलह उपस्थित हुआ था यज्ञ करते समय ! भरत-वंशियों के आचार्य वशिष्ठ महाराज का कहना था कि 'यज्ञ' में **'सोम-पान'** विहित है और उसका पान अवश्य किया जाएगा। उधर चन्द्र-वंशियों और उनके साथियों के आचार्य विश्वामित्र का कहना था कि 'सोम' का पान 'यज्ञ' में नहीं करने दिया जाएगा। बात यहाँ तक बढ़ी कि दोनों दलों में युद्ध हो गया। यही नहीं, किन्तु चन्द्र-वंशी बार-बार युद्ध में पराजित करके भारत की सीमा के बाहर निकाल

दिए गए, जो ईरान में जाकर बसे। वेद के सिवा उन ईरानी चन्द्र-वंशियों के धर्म-ग्रन्थ में भी इस घटना का उल्लेख है।

इसके बाद वेद के '**कर्म-काण्ड**' या '**धर्म-काण्ड**' के विरुद्ध यहाँ समय-समय पर विरोध अवश्य होता रहा है, परन्तु 'वैदिक धर्म' अपने श्रद्धालु प्रबल क्षत्रिय राजाओं के आस्तिक भाव की बदौलत युगों तक गौरवान्वित बना रहा। महा-भारत-युद्ध के बाद धर्म-शील क्षत्रिय राजाओं का भयङ्कर रूप से ह्रास हो गया। तब वैदिक धर्म के विरोधियों की बन आई। चार्वाकों ने और उसके बाद जैनों, बौद्धों तथा उनके ही जैसे दूसरे तर्क-शील आन्दोलन - कारियों ने व्यापक रूप से 'वैदिक धर्म' का विरोध करना आरम्भ कर किया। उनका यह विरोध सदियों तक जारी रहा और इस बार उनकी विजय इसलिए हो गई कि उनके समय के व्रात्य-नृपति-गण उनके अनुयायी हो गए, जिनके प्रभाव से 'यथा राजा तथा प्रजा' की कहावत के अनुसार उनकी प्रजा का भी अधिकांश 'वैदिक धर्म' का विरोधी हो गया।

इन विरोधियों में जैन और बौद्धों ने 'वैदिक धर्म' का विरोध करने में विशेष सफलता प्राप्त की। उनके प्रचारकों ने अहिंसा, सत्य आदि आचरण - सम्बन्धी सुधार का एक ऐसा आकर्षक 'प्रोग्राम' जनता के सामने रखा, जो उस समय के लोगों को हृदय - ग्राही प्रतीत हुआ। फलतः 'वैदिक धर्म' के अनुयायियों को बहु-मत के आगे दबना पड़ा। उन्होंने उन यागों को या तो बन्द कर दिया, जिनमें 'सुरा' और 'मांस' का उपयोग होता था, या उनसे इन वस्तुओं को निकाल ही दिया। इस प्रकार उन्होंने लोक-रुचि को देखकर उसके अनुसार अपने सारे धार्मिक कृत्यों का संस्कार कर डाला!

यही कारण है कि 'वैदिक धर्म' का जो वास्तविक रूप - प्रदर्शन ब्राह्मण-ग्रन्थों, गृह्य-सूत्रों तथा धर्म-सूत्रों आदि में है, वह बौद्ध काल में हिन्दुओं - द्वारा रचे गए धर्म - ग्रन्थों में नहीं दिखाई दे रहा है। यद्यपि वैदिकों ने तो दबकर या प्रभाव में आकर या लोभ के वश ऐसा कु-कृत्य तो किया, किन्तु 'शाक्त-सम्प्रदाय' ऐसा करने को तैयार नहीं हुआ। यही नहीं, उसने अपनी धार्मिक पद्धतियों में फेर-फार करने की अपेक्षा अपने को गुप्त कर लेना अधिक श्रेयस्कर समझा। वे ऐसे ही शक्ति - धर्मानुरागी और दृढ़ विश्वासी थे, परन्तु उनके दुर्भाग्य से उनके बहुतेरे भाई-बन्धुओं ने उन्हें इस रूप में भी सुख से बैठने नहीं दिया। अपने निबन्ध-ग्रन्थों में उन्होंने इनको भी समेट लिया और इनकी ओर से उन्होंने '**शाक्त-धर्म**' के सम्बन्ध में इस ढङ्ग से अपनी सम्मतियाँ दीं, मानों वे शाक्तों की ही दी हुई हों। और उन सम्मतियों का उन्होंने उनके धर्म-ग्रन्थों के नाम देकर श्लोकों से समर्थन तक कर डाला! यही नहीं, उन्होंने शाक्तों के दो मार्ग भी निर्धारित कर दिए—एक 'दक्षिण मार्ग' और दूसरा 'वाम-मार्ग', जब कि ये दोनों ही मार्ग आगम ग्रन्थों में 'मार्ग' के रूप में निर्दिष्ट नहीं हैं!

इतनी भीषण जाल-साजी कौन कर सकता है? परन्तु इसके देखने की कौन परवाह करता है? पवित्र संस्कृत में लिखे हुए धर्म - ग्रन्थों के अवतरणों को पढ़कर ऐसा कौन आस्तिक हिन्दू है, जो उनके आगे मस्तक न झुका देगा? उन्हें इसकी क्या खबर कि हमारे निबन्ध-कारों ने यह सब धर्म-प्रेम किस मतलब से दिखाया है? बहुत दिन नहीं हुए, इन्दौर के एक शास्त्री जी ने 'युग-परिवर्तन' या ऐसे ही नाम की एक पुस्तक छपवाई थी। उसमें उन्होंने लिखा था कि 'निर्णय-सिन्धु' के अन्त में 'कलि-वर्ज्य-प्रकरण' में जो सोलह श्लोक संगृहीत हैं, वे श्लोक जाली हैं क्योंकि जिन ग्रन्थों के वे श्लोक बताए गए हैं, उनमें वे श्लोक खोजने पर नहीं मिले। शास्त्रीजी ने अपनी उस महत्त्व-पूर्ण पुस्तक में बड़ा परिश्रम

करके, नाना ग्रन्थों का अवलोकन करके, यह सिद्ध कर दिखाया है कि ईसा की छठी सदी से लेकर पन्द्रहवीं सदी तक इस देश के निबन्ध-कारों ने कोई १५० ऐसे श्लोक स्वयं रचकर, प्राचीन ग्रन्थों का नाम देकर, अपने निबन्ध-ग्रन्थों में समाविष्ट कर दिए हैं। और ये श्लोक इतने विषैले साबित हुए कि आज का हमारा हिन्दू-समाज उन्हीं श्लोकों से बँध गया है। ये चतुर निबन्ध-कार ऐसे ही धर्म-प्रवीण थे! इन्होंने अपने निबन्धों के ऐसे ही जाली प्रमाणों से शाक्तों पर भी घातक प्रहार किया है।

परिणाम यह हुआ है कि आज के पण्डित-समाज की दृष्टि में **'शाक्त-धर्म'** एक निषिद्ध धर्म है। यह इतनी भीषण भ्रान्ति पैदा कर दी गई है कि इसका निरसन करना एक दुस्तर कार्य हो गया है। जब आज का पण्डित-समाज, जो अपने को 'वैदिक-धर्मी' होने का अभिमान करता है, अपने 'वैदिक धर्म' के असली रूप को फूटी आँखों देखना नहीं चाहता, उसको अपनाने की कौन कहे, तब उससे इस बात की आशा कैसे की जा सकती है कि वह शाक्तों के साथ न्याय करेगा? परन्तु शाक्त इतने निर्बल न पहले थे, न आज हैं। उनको जैसे पहले अपने धर्म में विश्वास था, वैसे ही आज भी है। लोक-रुचि को देखकर उन्होंने जैसे पहले अपने धर्म में परिवर्तन नहीं किया, वैसा करने को वे आज भी तैयार नहीं हैं। वे पवित्र ईश-वाणी पर हरताल फेरना घोर पाप समझते हैं। और न वे किसी मानवीय आचार्य के अनुशासनों को ईश-वाणी के सदृश ग्रहण कर सकते हैं। उनका अपनी धार्मिक पद्धतियों पर पहले ही की तरह हार्दिक दृढ़ अनुराग बना हुआ है और वे उसके अक्षर-अक्षर का अनुगमन करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं।

ऐसी स्थिति में आज के धर्म-प्रचारकों के निन्दा-पूर्ण लेखों, पुस्तकों या व्याख्यानों का उनकी दृष्टि में कोई मूल्य नहीं क्योंकि वे देखते हैं कि हमारे ये उपदेशक महानुभाव कोरे साम्प्रदायिक हैं और इनकी 'वैदिकता' की बातें सर्वथा बनावटी हैं तथा इनका दृष्टि-कोण संकुचित और पक्षपात-पूर्ण है। ये महानुभाव वर्तमान प्रगति से इतना मोह-ग्रस्त हैं, उदर-भरण के फेर के कारण लोक-रुचि से इतने दबे रहते हैं कि ये सदैव सत्य की खोज करने से पराङ्-मुख रहते हैं। फलतः इन्हें पता नहीं है कि ये क्या थे और आज क्या हो गए हैं! इनके 'वैदिक धर्म' का क्या रूप था और विरोधियों के द्वारा वह किस प्रकार नष्ट-भ्रष्ट किया गया तथा आज इनके 'वैदिक धर्म' का क्या रूप है। इनके बड़े-बड़े पण्डित 'वैदिक धर्म' का डङ्का तो पीटते रहते हैं, परन्तु जब उनसे कोई यह कहता है कि वेदों में पशु-यागों, सोम-यागों और मांस-परक श्राद्धों आदि का उल्लेख व्यापक रूप से मिलता है और अपने कथन के समर्थन में संहिता, गृह्य-सूत्र, धर्म-सूत्र आदि के प्रमाण उपस्थित करता है, तब ये रुष्ट होकर उसे गालियाँ देने लगते हैं तथा अपने वेदों के प्रमाणों का गौतम बुद्ध की वाणी में अर्थ का अनर्थ करने लगते हैं! साथ ही अपने ही जैसे पिछले युग के निबन्ध-कारों के ग्रन्थों के प्रमाण देकर (प्राचीन वैदिक ग्रन्थों के नहीं) अपने पक्ष का समर्थन करके अपने पाण्डित्य का प्रदर्शन करते हैं!!

इस समय देश में धर्म का ऐसा ही वितण्डावाद है। सन्तोष की बात है कि देश में दृढ़ विश्वासी आस्तिकों का अभाव नहीं है अन्यथा ये धर्माचार्य पिछले काल के निबन्ध-कारों से भी आगे बढ़कर बचे-खुचे वैदिक धर्म का 'सर्वं स्वाहा' करने से बाज न आते, परन्तु शाक्त इन सुजनों की सज्जनता से पूर्णतया परिचित हैं। धर्म की जो छीछा-लेदर ये लोग करते हैं, वह सब उनकी दृष्टि से कभी छिपा नहीं रहा है। ये शाक्तों का जो बिना मतलब विगर्हणा करते रहते हैं तथा जिस मतलब से ऐसा कुत्सित

कार्य करने का उन्हें साहस होता है, वह सब भी उन्हें ज्ञात है । इनकी यह लीला देखकर न तो उन्हें क्षोभ होता है, न क्रोध, वरन् इन पर दया आती है और वे जगदम्बा से यही प्रार्थना करते रहते हैं कि माँ इन्हें सु-बुद्धि दे, जिससे इनकी भ्रान्ति दूर हो और 'स्व-धर्म' को पहचानकर ये उसका सम्यक् रूप से अनुसरण करें ।

४८ महन्त, पण्डे और पुजारी आदि

सदियों के बाद भारत में स्वाधीनता के युग का आविर्भाव हुआ । इसका सारा श्रेय महात्मा गांधी और उनके अनुयायी कांग्रेसी जनों को है । महात्मा गांधी के नेतृत्व में भारतीय कांग्रेस ने स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए जो देश-व्यापी आन्दोलन किया था, उसी के परिणाम-स्वरूप बिना स - शस्त्र विद्रोह के ब्रिटिश सरकार ने भारत को ऐसा अधिकार दे दिया कि वह ब्रिटिश साम्राज्य से अलग होकर सर्वथा स्वतन्त्र हो जाए । यह सच है कि कांग्रेस ने जैसी स्वतन्त्रता के लिए प्रयत्न किया था, वैसी उसे नहीं मिली । ब्रिटिश सरकार ने भारत को अखण्ड नहीं रहने दिया और उसके कई टुकड़े कर डाले, जिससे उसके भविष्य के मार्ग में तरह-तरह की कठिनाइयों के आने की सम्भावना हो गई है । तथापि यह बात दृढ़ता के साथ कही जा सकती है कि इतने पर भी—कई टुकड़ों में विभक्त हो जाने पर भी—भारत इतना बड़ा रह जाता है कि वह उतने से ही संसार का एक परम शक्ति-शाली अग्र-गण्य राष्ट्र बन सकता है । प्रसन्नता की बात है कि हमारे लोक-नायक ऐसा प्रयत्न भी कर रहे हैं ।

यह सब ठीक है, परन्तु प्रश्न तो यह है कि जो भारतीय सदियों से राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक गुलामी में पिसते रहे हैं और जो मानव जीवन के अधिकारों से सर्वथा वञ्चित रहे हैं, वे आज एकाएक कैसे काया-कल्प करने में समर्थ होंगे ? वास्तव में भारतीयों को एक बार फिर जीवित राष्ट्र के रूप में परिणत करने के लिए बड़ी सावधानी से काम लेने की जरूरत है, परन्तु इस ओर ध्यान देता हुआ कोई दिखाई नहीं दे रहा है । ब्रिटिश सरकार की दासता से छुट्टी क्या मिली, हमारे लोक-नेता और उनके अनुयायी सर्वतोमुखी क्रान्ति करने की घोषणा करने लगे हैं ! कोई कहता है कि रूस के ढङ्ग की व्यवस्था देश में प्रचलित होनी चाहिए, तो कोई ब्रिटिश परम्परा का अन्धानुयायी बनने का उपदेश कर रहा है । कोई भू-स्वामियों और धन-पतियों के विनाश से देश का मङ्गल समझ रहा है, तो कोई वर्णाश्रम-धर्म तथा पण्डों, पुजारियों और महन्तों को विनष्ट कर डालने ही में देश का उद्धार समझता है ! सारांश यह कि जितने मुँह, उतनी बातें ! कल जो कांग्रेस के 'वल्लमटेयर' थे, वे आज नेताओं की तरह बोलते दिखाई दे रहे हैं ! सभी क्रान्तिकारी योजनाएँ प्रचलित करना चाहते हैं—ऐसी क्रान्ति-कारी कि 'पुराना सब कुछ नष्ट कर डालो और उसकी जगह पर सब कुछ नया ला बिठाओ !!'

हमारे जिन राष्ट्रीय नेताओं ने भारत के संविधान का निर्माण किया, उनके नूतन भारतीय राष्ट्र का ऐसा ही आदर्श रहा । वे ऐसे सुधारक नहीं थे कि किसी बिगड़ती हुई वस्तु को फिर सुधार कर उसे काम लायक बना दें, किन्तु वे 'संहार-कर्ता' सुधारक थे । जो वस्तु उनकी निगाह में बिगड़ी हुई थी, उसे उन्होंने नष्ट कर डालना ही श्रेयस्कर समझा ! अत्यन्त दुःख की बात तो यह है कि हमारे इन लोक-नायकों को अपनी कोई भी वस्तु अच्छी नहीं जँची । देश में हिन्दुओं की बहु-संख्या है, किन्तु हिन्दुओं की सामाजिक रीति-नीति तथा धार्मिक प्रवृत्ति से उनको घृणा थी । अतः उनकी क्रान्तिकारी योजनाओं में हिन्दू-समाज के पुनर्निर्माण की ही बात पहली रही ।

उदाहरण के लिए हम यहाँ साधु - सन्तों, मठाधीश महन्तों और पण्डे - पुजारियों को लेते हैं। सुधारकों का कहना है कि इस वर्ग के लोग अब पाखण्डी, स्वार्थी और ठग हो गए हैं। धर्म-कर्म की बात तो दूर रही, ये पापाचार के कीड़े हो गए हैं। इनके कारण सारे हिन्दू-समाज में गन्दगी फैल गई है और ये समाज के लिए भार-स्वरूप हो रहे हैं! अतएव इनको विनष्ट कर डालना ही श्रेयस्कर होगा, परन्तु सुधारकों का इस प्रकार का आक्षेप सर्वांश में जनता को मान्य नहीं है। यदि सुधारकों के आरोपों में सत्यांश अधिक होता, तो साधु-सन्तों, महन्त-मठाधीशों का लोप न जाने कब हो गया होता।

आज जब देश स्वाधीन हो गया है, तब राजनीतिक नेताओं का यह कहना सर्वथा उचित ही है कि हमें अपनी राजनीतिक उन्नति को और भी अधिक उन्नत करना है। अतएव हम देश - वासियों की सामाजिक दशा में तदनुसार सुधार अवश्य करेंगे। कोई भी बुद्धिमान् व्यक्ति उनकी इस माँग का विरोध नहीं करेगा, परन्तु जब इस माँग की आड़ में सारी सामाजिक व्यवस्था में आमूल परिवर्तन करने का कोई प्रयत्न करेगा, तो बुद्धिमान् तो अलग रहे, साधारण जन तक इसका विरोध करने को तैयार हो जायँगे। अपनी वस्तु किसको प्यारी नहीं होती? फिर हिन्दुओं ने तो अपनी जाति, अपने धर्म, अपनी संस्कृति की रक्षा के लिए, छाती पर पत्थर रखकर, अपने सगे-सम्बन्धियों तक का त्याग करना स्वीकार किया है। आज इस देश में जो करोड़ों मुसलमान और लाखों ईसाई दिखाई दे रहे हैं, वे किसी समय विशाल हिन्दू-समाज के अति प्रिय अङ्ग थे, जिनका उसे पर-वशता के कारण परित्याग करने को बाध्य होना पड़ा। अपने बन्धु-बान्धवों का उसने त्याग करना उचित समझा, इतनी अपार हानि सहनी उसने स्वीकार की, परन्तु उसने **'अपनेपन'** का आग्रह करना नहीं छोड़ा।

हमारे सुधार-वादी जानते हैं कि आज के हिन्दू-समाज की आधार-शिला वास्तव में सन्त-महन्त, मठ-मन्दिर और पण्डे-पुजारी ही हैं। इन सबको ढहा देने पर ही वे अपने मन के अनुसार हिन्दू - समाज का सङ्गठन कर सकेंगे। यही कारण है कि वे आए-दिन हिन्दू-समाज की इन पवित्र संस्थाओं का विरोध करते रहते हैं और कहते रहते हैं कि किसी समय इनकी उपयोगिता भले रही हो, अब ये समाज के लिए भार-स्वरूप हैं। ठीक है, जब तक गाय दूध देती रहे, तब तक उसका दूध पीते रहो और जब बूढ़ी हो जाने पर वह दूध देना बन्द कर दे, तब उसे मारकर खा जाओ!

सुधार-वादियों अर्थात् समाज-संहारकों को जानना चाहिए कि जब मुगल आक्रमणकारियों ने महाराज पृथ्वीराज को परास्त कर भारत पर अपना आधिपत्य स्थपित किया था, तब से अब तक हिन्दू-जाति, हिन्दू-धर्म और हिन्दू-संस्कृति की रक्षा इन्हीं संस्थाओं ने की है। सात सौ वर्ष के पराधीनता-काल के मुगल और हिन्दुओं के घोर सङ्घर्ष में हमारी यही पवित्र संस्थाएँ हिन्दुओं को संग्राम - क्षेत्र में बराबर डटे रहने को निरन्तर अनुप्राणित करती रही हैं। यही नहीं, अपने सहज ज्ञान-द्वारा यही साधु-वर्ग हिन्दू-समाज में धर्म, प्रेम और देश-भक्ति का भाव ऐसे ढङ्ग से भरता रहा कि आज हमारा देश सारा-का-सारा पवित्र तीर्थ-स्थान बन चुका है। यह इन्हीं साधु-सन्तों के सत्-प्रयत्नों का परिणाम है कि भारत के पर्वत-शिखर. नदियाँ, झील, सरोवर, ग्राम, नगर, टीले, पशु-पक्षी, वृक्ष, लता-गुल्म आदि, यहाँ तक कि मनुष्य तक, देवता की तरह पुजे और माने जाते हैं! ऐसा अनुपम देश-प्रेम क्या संसार के किसी भू-खण्ड में देखने को मिल सकेगा?

कितनी विडम्बना की बात है कि 'देश-प्रेम' की ऐसी अभूतपूर्व भावना सारे भारत में व्याप्त कर हिन्दू-जाति, हिन्दू - धर्म और हिन्दू-संस्कृति की रक्षा कर दिखानेवाले हमारे वही साधु - सन्त, मठ-

मन्दिर और पण्डे - पुजारी, हमारे लोक - नेताओं की आँखों में खटक रहे हैं--उन राजनीतिज्ञों की, जो सर्वज्ञ होने का दावा करते हैं ! जो कहते हैं कि हमसे अधिक न कोई इस देश का इतिहास जानता है, न धर्म-नीति, न राज-नीति, परन्तु वही हमारे नेता हिन्दुओं की दृष्टि में क्या हैं, इसका ज्ञान उन्हें न आज है और न कभी होगा। वस्तुतः वे यह सब कुछ जानना भी नहीं चाहते। वे तो अपनी धुन के पक्के हैं। उनकी क्रान्ति का मूल सिद्धान्त यही है कि भारतीय समाज के पुराने महल को ढहा कर--एक ऐसी इमारत खड़ी की जाए, जो संसार के अन्य राष्ट्रों की सभी बातों से सादृश्य रखती हो !

उक्त प्रकार की 'सादृश्यता' के लिए भारतीय हिन्दू-समाज के पुरुषों को शिखा - सूत्र से रहित होना पड़ेगा और कदाचित् हिन्दू-स्त्रियों को अपने पुराने लँहगों, साड़ियों और चूड़ियों से ! उनके मनोनुकूल महा-यज्ञ की 'दीक्षा' लेने के लिए, हिन्दुओं के लिए यह प्रारम्भिक कार्य है। इसी दीक्षा-विधान को कार्य का रूप देने के लिए हमारे सुधार-वादी नेता सबसे पहले साधु-सन्तों, मठों और मन्दिरों तथा पण्डों और पुजारियों का उन्मूलन कर डालना चाहते हैं क्योंकि यदि वे रहेंगे, तो उनका महा - यज्ञ नहीं होने पाएगा, परन्तु हमारे सर्वज्ञ सुधारक नेताओं को कदाचित् हिन्दुओं के जातीय सङ्गठन के महत्त्व-पूर्ण रहस्य का ज्ञान नहीं है।

हिन्दू-जनता इतनी मूर्ख नहीं है, जितनी वह समझी जाती है। वह अपना हानि-लाभ समझती है। वह यह भी जानती है कि कहाँ आग्रह करना चाहिए और कहाँ नहीं। उक्त नेताओं से हमारा विनम्र अनुरोध है कि वे इस तथ्य को समझें। यदि वे इस महत्त्व-पूर्ण तथ्य की उपेक्षा कर समाज के विकृतीकरण में लगे रहे, तो याद रहे कि वे अपने प्रयत्न में कदापि सफल नहीं होंगे क्योंकि सदा की सजग हिन्दू-जनता अपने को इतना कृतघ्न नहीं सिद्ध होने देगी कि उसके गुरु - जन उसके देखते - देखते समाज से सदा के लिए निकाल बाहर किए जाएँ ! और वे निकाले ही क्यों जाएँ ? संसार के सभी प्रमुख राष्ट्रों में धर्माचार्यों आदि सबको आज भी प्रमुख आदरणीय स्थान प्राप्त है, तब हिन्दुओं ने ही ऐसा कौन पाप किया है कि उनके समाज के अङ्ग-भङ्ग की बात सोची जा रही है !

अच्छा तो यह होता कि जो कुछ बुराइयाँ उनमें हों, उनको दूर करने तथा उन्हें सुधार कर समय के अनुरूप बनाने का प्रयत्न किया जाए। अतएव अपने नेताओं से हमारा यही अनुरोध है कि—वे हिन्दू-समाज के पूज्यों के विरुद्ध घृणा के गन्दे प्रचार को बन्द करें और कोई ऐसी सुन्दर योजना उपस्थित करें, जिससे समाज के पूज्य 'पूज्य-तम' बन जाएँ। ऐसा ही करने में देश और समाज का हित है।

४९ भ्रान्ति की भावना

आजकल कुछ लोग आर्यों की प्राचीन संस्कृति की प्रायः बातें करते दिखाई दे रहे हैं। उनका कहना है कि 'आर्य - संस्कृति' की अच्छी-अच्छी बातें लेकर 'नई सभ्यता' को उपयोगी बातों के आधार पर, हमें अपने समाज का 'नव - सङ्गठन' करना चाहिए, जिससे हमारा भारतीय राष्ट्र संसार के उन्नत राष्ट्रों के बराबर बैठ सके कि हम भी कुछ हैं ! यह सब तो ठीक है, परन्तु आश्चर्य हमें तब होता है, जब कुछ लोग आर्यों और उनकी संस्कृति को प्राचीन कहते हैं, मानों उनका इस पवित्र भूमि में आज अस्तित्व ही न हो !

न तो आर्यों का और न उनकी संस्कृति का हो इस पवित्र भूमि से कभी तिरोधान हुआ है और न उसके तिरोधान होने की भविष्य में सम्भावना है। आर्य भी और उनकी संस्कृति भी इस पवित्र 'भारत-भूमि' में पहले ही की तरह आज भी फल-फूल रही है। यदि ऐसा न होता, तो हमारा 'भारत' भी चाल्डिया, बेबलन, प्राचीन मिश्र आदि-आदि देशों की तरह इतिहास की सामग्री बन गया होता।

आवश्यकता इस बात की है कि हम अपनी ही दृष्टि से अपनी वस्तु को देखें। तभी उपर्युक्त भ्रान्ति दूर हो सकेगी और हम वास्तविक पदार्थ को पहचान सकेंगे।

किसी जाति की संस्कृति का ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें उसके आभ्यन्तरिक तथा बाह्य क्रिया-कलापों पर विचार करना पड़ता है। उसने इह - लौकिक तथा पार - लौकिक जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए कौन-कौन से सिद्धान्त स्थिर किए तथा अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए उन्हें अपने जीवन को व्यवस्थित करके किस प्रकार कार्य का रूप दिया ? यह सब जान कर ही हम उसकी संस्कृति को सम्यक् रूप से हृदयङ्गम कर सकते हैं। हमारे प्राचीन-कालीन पूर्वजों ने इस सम्बन्ध में जो सिद्धान्त स्थिर किए थे और उन्हें कार्य का रूप देने के लिए अपने जीवन तथा समाज का जिस प्रकार सङ्गठन किया था, वह सब अपने मूल रूप में आज दिन भी 'हिन्दू-समाज' की व्यवस्था में व्यापक रूप से विद्यमान् है।

यदि ऐसा न होता, तो आज के कोटि-कोटि हिन्दू **'महा-मन्त्र गायत्री'** की ओर आकृष्ट दिखाई न देते, न **श्रीगङ्गा जी** का परमेश्वर के सम - कक्ष आदर करते होते, न **'गो - माता'** को ही अपनी पवित्र भावनाओं में सर्वोच्च स्थान देते और न अपने सामाजिक सङ्गठन को इतना सुदृढ़ रखते हुए भी इतना लचीला होने देते कि विरोधी और विदेशी भावनाओं को भी उसके घेरे में समुचित स्थान मिलता होता। अपने बड़े लोगों से हमारी विनम्र प्रार्थना है कि वे इस महत्त्व-पूर्ण तथ्य को हृदयङ्गम कर अपनी भ्रान्ति को दूर करें अन्यथा उनकी विपरीत शिक्षाओं से राष्ट्र का उत्थान होने के स्थान में, उसका पतन होने की ही अधिक सम्भावना है।

५० हमारा आदर्श

सदियों की पराधीनता के बाद भारत को 'स्वाधीनता' के दिन देखने को मिले हैं। यह सौभाग्य उसे स्वार्थ-त्यागी तथा देश-भक्त वर-पुङ्गवों के अनवरत बलिदानों से प्राप्त हुआ है, परन्तु यह 'स्वाधीनता' अभी पूर्ण नहीं है, आंशिक मात्र है क्योंकि 'स्वाधीनता' मिली है केवल 'राजनैतिक' अर्थात् हमारे विदेशी शासक यहाँ से चले भर गए हैं ! देश का शासन-भार उन्होंने हमारे देश के नेताओं को सौंप भर दिया है ! अतएव यह 'राजनैतिक स्वतन्त्रता' भर हुई।

सदियों तक मुगल शासकों के अधीन रहकर और डेढ़ सौ वर्ष तक ब्रिटिश शासकों की पराधीनता में रहकर––भारत को अपनी केवल राजनैतिक स्वतन्त्रता ही नहीं खोनी पड़ी थी वरन् उसे सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सङ्गीत एवं कला आदि-आदि सभी क्षेत्रों में अपने विदेशी शासकों की वश्यता स्वीकार करनी पड़ी थी। फलतः हमारे इन सभी क्षेत्रों में **'वैदेशिकता'** ने अपना बहुत-कुछ प्रभाव डाल रखा है और जब तक उसका वह दूषित प्रभाव, हमारे अपने उन सभी क्षेत्रों से हटाया नहीं जायगा अर्थात् अपनी प्राचीन भारतीय संस्कृति और सभ्यता को 'पञ्च-गव्य' पिलाकर पुनः शुद्ध नहीं कर लेंगे, तब तक हम पूर्ण रूप से स्वतन्त्र नहीं हो सकते।

हमारा ऐसा **'पूर्ण स्वतन्त्र भारत'**––हमारे स्वर्णिम स्वप्नों का भारत—हमें तभी देखने को मिलेगा, जब हम अपने लोगों में 'अपने-पन' का भाव––क्या खान-पान में, क्या रहन-सहन में, क्या परस्पर के व्यवहार में, क्या 'राष्ट्र - जीवन' के प्रत्येक अङ्ग तथा क्षेत्र में पूर्ण रूप से भर सकने में सफल-मनोरथ होंगे और यह 'अपनेपन' का भाव तभी आ सकता है, जब हमारे देश में पहले की तरह **'सार्वदेशिक बन्धुत्व'** का तुमुल घोष चारों ओर से उद्घोषित होने लगेगा।

(५)

रवि चलै शशि चलै नखत - समूह चलै,
चलत रहत नित जोर - जोर पानी है।
भूमि चलै वायु चलै विश्व माँहि रेला - पेल,
चला-चली लखि अणु-गति की कहानी है।
तोर ही प्रसार यह गति - शील जीवन है,
गति-हीन काँहि मृत्यु, कविन बखानी है।
शरण गह्यों हौं तोरि माँगौं तोसों कर जोरि,
दया करु आय मोरि तू ही ठकुरानी है।।

(६)

तेरो है प्रकृति - रूप यही एक विश्व सारा,
जाको नाँहि आदि-अन्त ऐसी तू भवानी है।
याको कहि मिथ्या चहैं रहिबो बिलग दूरि,
नास्ति को कहैं सत्य केते अभिमानी हैं।
माया को प्रसाद तेरो विज्ञन को अज्ञता में,
राखि करै खेला निज तू ही महा-रानी है।
शरण तिहारि गह्यों द्वारि पै पुकारि रह्यों,
दया करु आय मोरि तू हो ठकुरानी है।।

(७)

एतो बड़ो विश्व तोरि लीला को अनूप रूप,
देख जाको होत नाँहि मुग्ध कौन प्रानी है!
चारों ओर बगरो बसन्त ऐसो नित रहै,
खग मृग करत किलोल मन - मानी है।
यामें पाय अपने को कौन ना कृतार्थ होत,
जाके अणु माँहि तू - ही - तू समानी है।
शरण तिहारि गह्यों द्वारि पै पुकारि रह्यों,
और को न हेरौं मोरि तू ही ठकुरानी है।।

(८)

तू है सत्य तू है नित्य विश्व हू है सत्य नित्य,
बात यह छिपी नाँहि लोगन कै जानी है।
तू है अनन्त तो विश्व हू अनन्त राजै,
जानत जहान यह बात हू पुरानी है।
तू है असीम तो विश्व हू असीम दीखै,
कहूँ नाँहि भेद कछू शास्त्र हू प्रमानी है।
शरण तिहारि गह्यों द्वारि पै पुकारि रह्यों,
और को न हेरौं मोरि तू ही ठकुरानी है।।

(९)

हेतु काहि हितू मानि शुद्धि कर गहि कर,
सामुहे तृतीय थापि पूजा चित ठानी है।
मीठे-मीठे मन्त्र पढ़ि यथा - थान मुद्रा मुद्रि,
तृप्त करि तृप्त होत जाकी विधि जानी है।
पूजि - अर्चि साधक प्रसाद लेत बार - बार,
भक्ति मन माँहि 'तोरि' अति उमगानी है।।
जाको देत ऐसो ज्ञान बड़ - भागी सोई जन,
मो पै तू पसीज मइया! मोरि ठकुरानी है।।

(१०)

तू ही सिद्धि-विद्या मइया तू ही दस महा-विद्या,
तू ही नव - चण्डी - मूर्ति बेदन बखानी है।
तू ही तन्त्र तू ही मन्त्र तू ही यन्त्र-राज मइया,
तू ही चक्र तू ही पीठ सबमें दिखानी है।
तू ही भुक्ति तू ही मुक्ति तू ही भक्ति अनुरक्ति,
तु ही बोध - रूपा जगदम्बिका भवानी है।
शरण तिहारि गह्यों द्वारि पै पुकारि रह्यों,
और को न हेरौं मोरि तू ही ठकुरानी है।।

।। फल-श्रुति ।।

पढ़ै दशक नित नेम सों, भक्ति-सहित चित लाय।
सिद्ध मनोरथ होंय सब, भव - बाधा मिट जाय।।

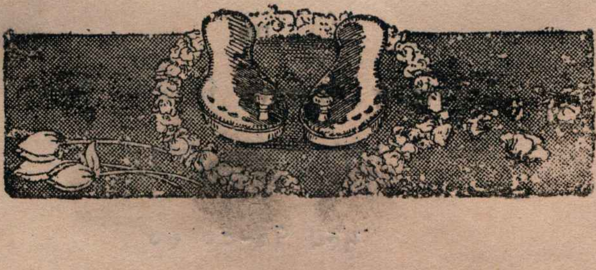

रजि० सं० ३२९८१/५७]   अगस्त, १९९१   [रजि० सं० ए० डी० ९६

सम्पादक, मुद्रक एवं प्रकाशक : श्री ऋतशील शर्मा, परा वाणी प्रेस, इलाहाबाद-२११००६

शाक्त धर्म क्या है ?

शाक्त-धर्म की प्राचीनता,
शाक्त-धर्म की महत्ता,
शाक्त-धर्म का संदेश,

और

शाक्त-धर्म की स्वाभाविक विशेषताओं

पर प्रकाश डालनेवाला

निबन्धसंग्रह

एवं

परमहंस पुण्यानन्द गिरि विरचित

शाक्त—क्रम

मूल्य १५-०० रु०